www.thearyasamaj.org

छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
हिन्दी मासिक मुख पत्र
मास–भाद्रपद–आश्विन, संवत् 2070
सितम्बर 2013

ओ३म्

अंक 98, मूल्य 10

अग्निदूत

अग्निं दूतं वृणीमहे. (ऋग्वेद)

14 सितम्बर
हिन्दी दिवस

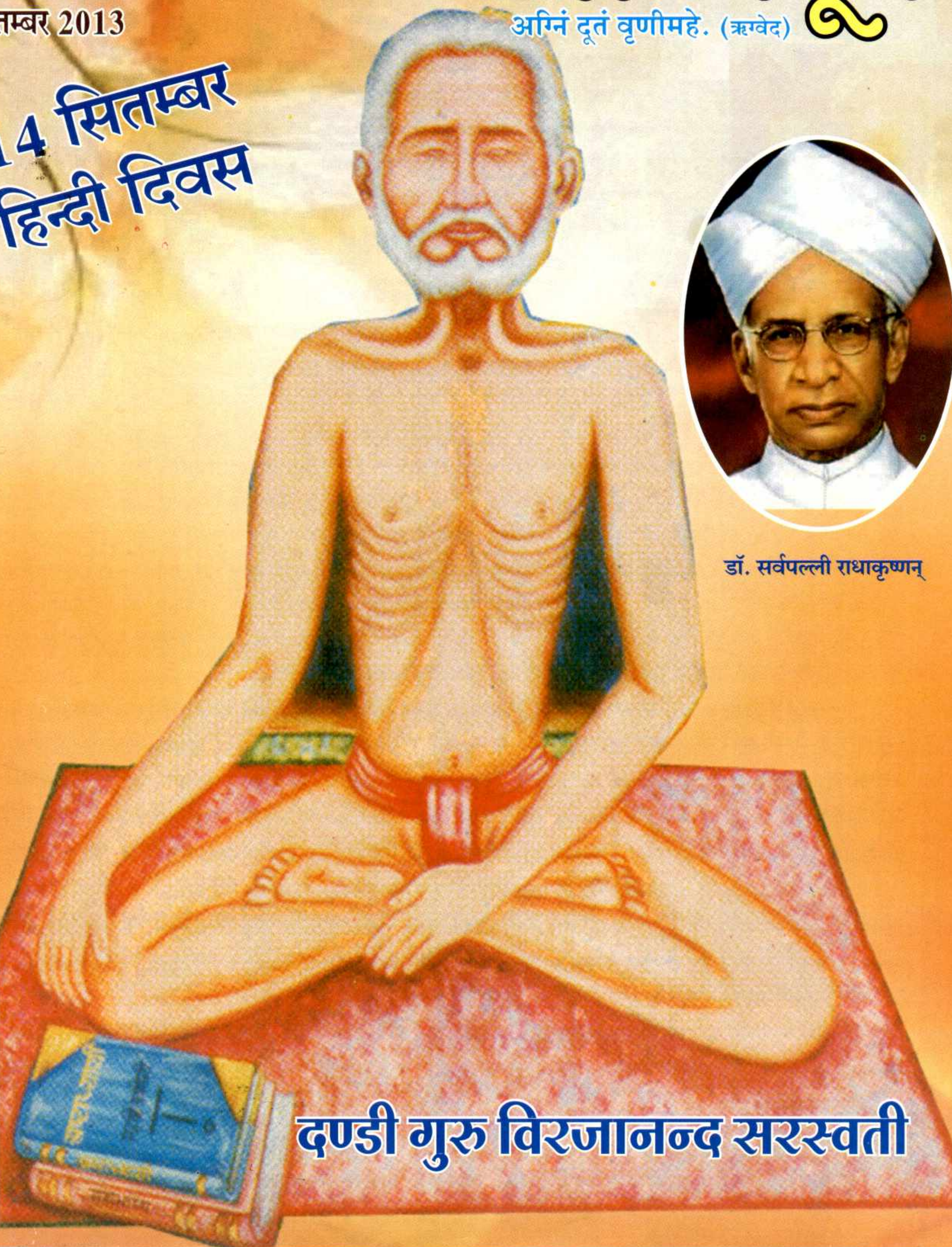

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

दण्डी गुरु विरजानन्द सरस्वती

www.thearyasamaj.org

दण्डी गुरु विरजानन्द सरस्वती

डॉ. अशोक आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती को महर्षि बनाने वाले, इतिहास में स्वर्णाक्षरों में स्थान पाने वाले दण्डी गुरु विरजानन्द जी का जन्म १८३५ वि. तद्नुसार १७७८ ई. को पंजाब के करतारपुर के समीप गंगापुर गांव के सारस्वत ब्राह्मण पं. नारायणदत्त जी के यहां हुआ। पंचवर्षीय अवस्था में चेचक के कारण आंखों की ज्योति जाती रही। पिता ने घर पर ही संस्कृत की शिक्षा दी, किन्तु छोटी आयु में ही माता-पिता ने साथ छोड़ दिया। भाई व भावज के व्यवहार से तंग आकर गृह त्याग कर ऋषिकेश व फिर कनखल चले गए। यहां स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास दीक्षा लेकर विरजानन्द नाम पाया।

कुछ समय कनखल निवास के पश्चात् काशी चले गए, जहां विद्याधर जी से उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की। यहां से गया जाकर अध्ययन व अध्यापन किया। यहां से क्रमशः कलकत्ता, सोरों, गड़ियाघाट गए। यहांएक दिन मन्त्रपाठ करते स्वामी जी को अलवर नरेश ने देखा तो वह उन्हें इस शर्त पर अलवर ले गए कि वह स्वामी जी से प्रतिदिन शिक्षा लेंगे तथा जिस दिन नहीं आवेंगे, उस दिन स्वामी जी अलवर छोड़ सकते हैं। शीघ्र संस्कृत सिखाने के लिए स्वामी जी ने "शब्द बोध" पुस्तक की रचना की। एक दिन राग रंग में मस्त अलवर नरेश गुरु जी के पास जाना भूल गया, बस स्वामी जी ने उसी दिन अलवर से प्रस्थान कर पुनः सोरों के गड़ियाघाट जा विराजे। यहां स्वामी जी को भयंकर रोग ने आ घेरा। स्वामी जी के शिष्य उन्हें अपनी सेवा के बल पर मौत के मुंह से वापिस लाये। अब स्वामी जी यहांसे मुरसान, भरतपुर होते हुए मथुरा पहुंचे। यहां स्वामी जी ने पाठशाला खोली तथा नियमित शिक्षा दान करने लगे। पढ़ाने की उत्तम शैली के कारण शिक्षा के केन्द्र काशी से भी शिक्षार्थी स्वामी जी के पास आने लगे। स्वामी जी देश को स्वाधीन करा पुनः विश्व गुरु के रूप में देखना चाहते थे। वह जानते थे कि राजा के सुधार से लोग स्वयं ही सुधर जावेंगे। यही कारण है कि आपने राजाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। मथुरा में शास्त्रार्थ की चुनौती मिली, जिसे स्वीकार किया किन्तु यह शास्त्रार्थ कुटिलता की भेंट चढ़ गया। स्वामी जी अष्टाध्यायी और महाभाष्य नामक आर्ष ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों को धूर्तों की कृति मानते थे। अतः स्वामी जी आर्ष ग्रन्थों के प्रचार व प्रसार में जुट गए।

सन् १८५७ के भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के आप जनक थे। इस में भाग लेने वाले सभी राजा आपके शिष्य थे। यह योजना आपने अपने गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी के आदेश से बनाई। इस योजना पर सभी शिष्य शासकों ने अमल किया। स्वामी जी एक सर्वधर्म सभा के माध्यम से भारत को एक संगठन में बांधना चाहते थे किन्तु जयपुर के राजा रामसिंह के इसमें रुचि न लेने से ऐसा सम्भव नहीं हो सका। स्वामी जी की शिक्षा की प्रसिद्धि चतुर्दिक फैल रही थी, किन्तु स्वामी जी भारत के उद्धार के लिए आर्ष ग्रन्थों के प्रसारार्थ शिष्य खोज रहे थे, इन्हीं दिनों प्रभु आदेश से स्वामी दयानन्द सरस्वती आपको शिष्य स्वरूप मिले। १९१७ वि. तदनुसार १८६० ई. को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गुरु जी की इच्छानुरूप आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया। गुरुजी ने स्वामी दयानन्द को अपने सम विद्वान् बनाया तथा वैदिक प्रचार व स्वाधीनता आदि का बोझ अपने कन्धों से उतार दयानन्द के कन्धों पर दे डाला। इस प्रकार गुरु विरजानन्द को इस बात की खुशी थी कि जैसे शिष्य की आवश्यकता थी वह उनको अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में मिल गया। सम्वत् १९२५ वि. आश्विन की बदी त्रयोदशी सोमवार तदनुसार सितम्बर १८५८ ई. को निश्चित ही इस संसार से विदा हुए। उनके देहावसान का समाचार सुन महर्षि दयानन्द सरस्वती के मुख से निकला आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है। आपका जीवन आर्ष ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार को समर्पित था। जब तक सृष्टि रहेगी आपका नाम सूर्य के समान चमकता रहेगा।

पता - ११६, मित्र विहार, मण्डी डबवाली, हरियाणा

www.thearyasamaj.org

★ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः ॥८२१॥ (विद्वान् ज्ञान की वर्षा करके संसार को पवित्र करता है।)

अग्निदूत

हिन्दी मासिक

राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक विचारों की मासिक पत्रिका

वर्ष - ०९, अंक ३ — ओ३म् — मास/सन् - सितम्बर २०१३

विक्रमी संवत् - २०७०
सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,११४
दयानन्दाब्द - १९०

श्रुतिप्रणीत-सिद्धधर्मवह्निरूपतत्त्वकं,
महर्षिचित्त-दीप्त वेद-सारभूतनिश्चयं।
तदग्निसंज्ञकस्य दौत्यमेत्य सज्जसज्जकम्,
सभाग्निदूत-पत्रिकेयमादधातु मानसे॥

: प्रधान सम्पादक :
आचार्य अंशुदेव आर्य
प्रधान सभा
(मो. ८८२७७५०४७८)

: प्रबंध सम्पादक :
आर्य दीनानाथ वर्मा
मंत्री सभा
(मो. ९८२६३६३५७८)

: सहप्रबंध सम्पादक :
श्री अवनीभूषण पुरंग
कोषाध्यक्ष सभा
(मो. ९८९३०६३९६०)

: व्यवस्थापक :
श्री दिलीप आर्य
उपमंत्री (कार्यालय) सभा
मो. ९६३००८०१२५७

: सम्पादक :
आचार्य कर्मवीर
मो. ९७५२३८८२६७

कार्यकारी सम्पादक
आचार्य धनञ्जयशास्त्री 'जातवेदाः'
मो. ९०३९६९९२१९

पेज सज्जक : श्रीनारायण कौशिक
प्रबधंक : श्री रामेश्वर प्रसाद यादव

- कार्यालय पता -
छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द परिसर, आर्य नगर, दुर्ग (छ.ग.) ४९१ ००१
फोन : (०७८८)२३२२२२५, ४०३०९७२
फैक्स नं. : ०७८८-४०११३४२;
e-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com

वार्षिक शुल्क - १००/- दसवर्षीय-८००/-

विषय - सूची

पृष्ठ क्र.

१.	वेदामृत : आओ इन्द्र के दर्शन करें।	स्व. डॉ. रामनाथ वेदालङ्कार	०४
२.	सम्पादकीय : संस्कृत की पुत्री हिन्दी का विरोध क्यों ?	आचार्य कर्मवीर	०५
३.	जीवन श्रेष्ठ बनाएँ	स्वामी रामानन्द सरस्वती	०७
४.	कर्म-फल मीमांसा	महात्मा चैतन्यमुनि	१०
५.	सुखी होने के लिये बुराईयों को छोड़ें	डॉ. अशोक आर्य	१२
६.	कविता : ये जिन्दगी	श्रीमती शीतल वाही	१४
७.	आओ चले स्वर्ग की ओर	डॉ. दिव्येश्वर शास्त्री	१५
८.	वैदिक साहित्य में विश्वकर्मा का स्थान	आचार्य विष्णुमित्र	१७
९.	वेद ही शिक्षा नीति का आधार हो	वेद विज्ञान से साभार	१९
१०.	कविता : सामाजिक व्यथा	विजयलता सिन्हा	२०
११.	५ सितंबर शिक्षक दिवस	आचार्य प्रेमप्रकाश शास्त्री	२१
१२.	यज्ञ और पर्यावरण	डॉ. सुदर्शनदेवार्य	२३
१३.	आत्मा-कैसी, कहाँ, कितनी (समीक्षा)	डॉ. रघुवीर वेदालंकार	२५
१४.	ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमिह। धियो यो नः प्रचोदयात्॥	स्वामी ध्रुवदेव परिव्राजक	२७
१५.	भोजन : कुछ व्यावहारिक सिद्धान्त	डॉ. अजय आर्य	२९
१६.	होमियोपैथी से सफेद दाग का उपचार	डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी	३२
१७.	समाचार दर्पण		३३

सूचना : छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का परिवर्त्तित अणुसंकेत (ई-मेल) E-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com

सूचना : हमारा नया वेब साइट देखें
Website : http:/www.cgaryapratinidhisabha.com

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

सम्पादक प्रकाशक मुद्रक आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा पायोनियर प्रिन्टर्स, ओमपरिसर, आर्यनगर, दुर्ग से छपवाकर छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग से प्रकाशित किया गया।

www.thearyasamaj.org

वेद वेदामृत

आओ इन्द्र के दर्शन करें

वेद वेदामृत

भाष्यकार - स्व. डॉ० रामनाथ वेदालङ्कार

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वः, उग्रं निधातुरन्वायमिच्छन्।
अपृच्छमन्यां उत ते म आहुः, इन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम॥ ऋग्. ५,३०,२

ऋषिः बभ्रुः आत्रेयी। देवता इन्द्रः। छन्दः त्रिष्टुप्।

● **(अस्य)** इस (इन्द्र) के **(सस्वः)** छिपे हुए **(पदं)** स्वरूप को **(अवाचचक्षं)** (मैने) देखा है, **(अनु इच्छन्)** खोज करते हुए (मैने) **(निधातुः)** धारणकर्त्ता (इन्द्र) के **(उग्र)** उत्कृष्ट स्वरूप को **(आयम्)** पा लिया है। **(अन्यान्)** औरों से **(अपृच्छम्)** (मैने) पूछा था। (उत) और (ते) उन्होंने **(मे)** मुझे **(आहुः)** कहा (कि) **(नरः)** (हम) मनुष्य **(बुबुधानाः)** प्रबल जिज्ञासा रखते हुए (ही) इन्द्र को **(अशेम)** पा सकते हैं।

● **वे**द शास्त्र कहते हैं कि 'इन्द्र' बहुत वीर है, दानी है, लोकों का रचयिता है, जगत् का धर्ता है, मेघों को बरसाने वाला है, नदियों को बहाने वाला है, सूर्य-चांद को चमकानेवाला है, भक्तों का रक्षक है, दुष्टों का ध्वसंक है। तुम पूछते हो - "वह इन्द्र कहां है ? किसने उसे देखा है ?" तुममें से कुछ शास्त्रोक्त बात पर विश्वास करते हुए जिज्ञासा-भाव से पूछते हैं, कि उसका पता-ठिकाना जानें, कुछ संशयालु होकर पूछते हैं कि उसका अता-पता कोई बता सकेंगे तब तो उसकी सत्ता मानेंगे, अन्यथा नहीं, कुछ कट्टर नास्तिकता के साथ 'वह है ही नहीं' यह मन में रखते हुए पूछते हैं। सुनो, तुम सभा से मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि तुम मूर्त्तिमान् के रूप में उसे कहीं देखने की आशा करते हो, तो कभी देख नहीं पाओगे। तुम यह सोचते हो कि जैसे कुम्हार घट की रचना करता हुआ या जुलाहा पट बुनता हुआ दिखाई देता है, वैसे ही इन्द्र अपने हाथों से जगत् की वस्तुएं रचता हुआ या उन वस्तुओं को धारण करता हुआ दृष्टिगोचर होगा, तो तुम्हें निराश होना पड़ेगा। जो निराकार और निरवयव है, उसकी मूर्ति और उसके हाथ-पैर आदि अवयवों को तुम कैसे देख सकते हो ? वेद क्वचित् सहर्षशीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्त्रपात् आदि रूप में उसकी आंखो का, रथ, घोड़े, वज्र आदि साधनों का तथा भक्षण, पान आदि क्रियाों का जो वर्णन करते हैं, वह आलंकारिक भाषा है।

इन्द्र के दर्शन वे ही कर पाते हैं, जो सच्चे भाव से उसकी खोज करते हैं। उसका स्वरूप गुह्य है। पहले मैं भी जब भक्तों से उसकी महिमा सुनता था, और उसे देख नहीं पाता था, तब व्याकुल हो जाता था। मेरे मन में भी उसकी सत्ता के विषय में प्रश्नवाचक चिह्न लगता था। मैने ईश्वर-द्रष्टा मनीषियों से पूछा। उन्होंने मुझे कहा कि इन्द्र के दर्शन शंकाशील मन से नहीं होते, उनके लिए जिज्ञासु बनना आवश्यक है। तब मेरे अन्दर इन्द्र को खोजने की लगन लग गई। उसे पाये बिना मुझे चैन नहीं था, दिन-रात उसी की रटना लगी थी। मैंने अपने चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख कर लिया। मेरा मन उसी के ध्यान में तल्लीन रहने लगा। अन्ततः मैंने उसके छिपे हुए रूप का दर्शन पा लिया। अब सूर्य, अग्नि, वायु, विद्युत, चन्द्र, तारे सब में मुझे उसी का दिव्य स्वरूप मुस्कराता हुआ दिखाई देता है। आओ, हम सभी उसके दर्शन करें।

पता - गीता आश्रम, वेद मंदिर, ज्वालापुर, हरिद्वार (उत्तराखंड)

संस्कृतार्थ :- १. सस्वः अन्तर्हित (निघं ३.२५)। २. चक्ष दर्शनार्थक (निघं ३.११)। ३. अय गतौ, लङ्। ४. बुबुधानाः बुभुत्समानाः (सायण) बुधिर बोधने। ५. अशूङ् व्याप्तौ. व्यत्यय से शप्।

www.thearyasamaj.org

सम्पादकीय

संस्कृत की पुत्री हिन्दी का विरोध क्यों ?

राष्ट्रभाषा के बारे में जब भी कुछ सोचने या लिखने की बात मन में उतरती है तो अनायास ही किसी मनीषी का यह स्वर्णिम उद्गार-**हिन्दी भाषा ही सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो सकती है** दिल दिमाग को झकझोर डालता है। क्योंकि यही वह भाषा है जिसे हम इस राष्ट्र की आत्मा कहें तो भी अत्युक्ति बिल्कुल नहीं होगी। यहाँ की संस्कृति व सभ्यता की अन्तश्चेतना उजागर करने का यह एक सशक्त माध्यम है। भावनात्मक एकता की जड़ को अभिसिञ्चन कर पारस्परिक प्रेम को अतिशय पल्लवित व पुष्पित करने का दायित्व राष्ट्रभाषा के रुप में इसी पर है। हिन्दुस्तान के अन्दर केवल यह हिन्दी भाषा ही मात्र एक ऐसा साधन है जो जनता के बीच स्व की भावना को पैदाकर राष्ट्र के लोगों के अन्दर राष्ट्र गौरव का एहसास प्रदान करा सकती है।

यह इस देश का बहुत ही दुर्भाग्य रहा कि हिन्दुस्तान में हिन्दी जिसे माथे की बिन्दी का गौरव मिलना चाहिए था सम्मान तो बहुत दूर की बात रही ऐसा घोर अपमान इसे मिला है कि पूरे विश्व के अन्दर किसी भी देश में अपनी राष्ट्रभाषा की ऐसी दुर्गति नहीं हुई होगी। मातृभाषा के साथ बर्बरतापूर्ण अत्याचार इसके उन नाजायज बेटों के ही हाथों हो गया जिनके हाथों में इसकी सुरक्षा का दायित्व था। किसी भी आजाद देश के लिए इससे बड़ी बदकिस्मती और कुछ हो ही नहीं सकती कि वह अपनी राष्ट्रभाषा का तत्काल निर्धारण भी न कर सके। आजादी के बाद जब पहली बार आजाद हिन्दुस्तान का संविधान बनाया जा रहा था। उनदिनों हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की बातें प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग ने अपने-अपने स्तर पर पटल पर रखी। कुछ दकियानूसी सोच के चलते जब पूर्णरुप से आम सहमति नहीं बन पायी तो इस संबंध में दी जाने वाली थोथी दलिलों का निराकरण के प्रयास भी हुये। क्योंकि यही एकमात्र ऐसी भाषा इस समय तथा उस समय भी ऐसी रही कि इस देश को हर कोनों से किसी न किसी प्रकार आत्मीयता का स्पर्श करती प्रतीत हुई थी यह सत्य है। इतना ही नहीं इसे ही राष्ट्र भाषा घोषित करवाने के लिए हिन्दी के दीवानों ने न केवल प्रदर्शन किया प्रत्युत धरने पर बैठकर लाठियाँ भी अपनी पीठ पर खाई। इतना होने के बावजूद भी तत्कालीन राष्ट्र के कर्णधारों ने हिन्दी के साथ न्याय कर पाने की हिम्मत नहीं जुटायी। यही कारण है राष्ट्र की - अस्मिता यह भाषा राजनीति का शिकार होकर आजादी के जन्मकाल से ही अस्तित्व संकट के घेरे पर आ गयी। इस संबंध में जो कानून बनाये गये ये भी अपने आप में कम दिलचस्प नहीं है। यही कारण रहा कि *संविधान के अनुच्छेद २४३ में यह स्पष्ट लिख दिया गया कि 'संघ की सरकारी भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी और संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए भारतीय अङ्कों का अन्तर्राष्ट्रीय रुप होगा।' किन्तु अधिनियम के खण्ड (२) में लिखा गया 'इस संविधान के लागू होने के समय से १५ वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा, जिनके लिए इसके लागू होने से तुरन्त पूर्व होना था।' अनुच्छेद की धारा में व्यवस्था की गई - 'संसद उक्त पन्द्रह वर्षों की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा - (क) अंग्रेजी भाषा का (अथवा) अंकों के देवनागरी रुप का ऐसे प्रयोजन के लिए प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों' इसके साथ ही अनुच्छेद (१) के अधीन संसद की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेजी में सम्पन्न होगी। २६ जनवरी १९६५ के पश्चात् संसद की कार्यवाही केवल हिन्दी (और विशेष मामलों में मातृभाषा) में ही निष्पादित होगी, बशर्ते संसद कानून बनाकर कोई अन्यथा व्यवस्था न करें।*

चाहिए तो यह था कि संविधान में हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा मान लिया जाता। अंग्रेजी के सहयोग की बात ही नहीं आनी चाहिए थी, कारण, राष्ट्रभाषा राष्ट्र की आत्मा का प्रतीक है। हमारे साथ स्वतन्त्र होने वाले पाकिस्तान ने उर्दू को अपनी राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया, और हम अपनी राष्ट्र भाषा क्या हो इस उलझन में ही उलझ गये। हमारे पश्चात् स्वतन्त्र होने वाले अनेक अन्य राष्ट्रों ने भी अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा की घोषणा कर दी, किन्तु भारत के कर्णधारों ने 'सबको खुश करने' की नीति पर चलते हुए राष्ट्रभाषा को कहीं का नहीं छोड़ा। अपने ही घर के अन्दर महारानी को दासी की तरह गुजरबसर करने के लिए मजबूर कर दिया। यह सभी को मालूम है सबको खुश करने का अर्थ सबको नाराज करना होता है। वही हुआ।

महाभारत के पढ़ने-सुनने वाले यह बात अच्छी तरह जानते है कि पाण्डवों को एक वर्ष का अज्ञातवास हुआ था, यह बात भी जगजाहिर है कि प्रभुराम को चौदह वर्ष का लम्बा वनवास मिला था। भारत देश के कानून के मुताबिक आजन्म कारावास भी चौदह वर्ष का होता है, जो कट कटाकर १०-११ वर्ष ही रह जाता है, किन्तु यह लिखते हुए खून का घूंट पीकर रह जाना पड़ता है कि हिन्दुस्तान की अस्मिता स्वाभिमान की सम्पदा मेरी हिन्दी को १५ वर्षों का घोर वनवास मिला। यह कहने

www.thearyasamaj.org

की आवश्यकता नहीं कि संविधान-निर्माण के समय देश के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू थे। जो उस समय के कांग्रेस के बेजोड़ नेता माने जाते थे। कहीं पर पढ़ी वह बात मेरी स्मृति में बरबस आ जा रही है जिसे नेहरू जी ने किसी प्रसंग में स्वयं ही कहा था कि मेरा हिन्दू के घर जन्म लेना महज दुर्भाग्य है वरना मैं शिक्षा से अंग्रेज व विचार से मुसलमान हूँ। यह निर्विवाद सत्य है कि वे शरीर से भारतीय, किन्तु आत्मा से विदेशी थे। उन्होंने राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर हिन्दी के राज्याभिषेक का सर्वप्रथम विरोध किया। उनकी संकीर्ण सोच के तहत उन्हें इस राज्याभिषेक में उत्तर-दक्षिण का बंटवारा नजर आया। हिन्दी पर वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, कूटनीतिक एवं व्यापारिक शब्दावली के अभाव का दोषारोपण कर इसे नकारने एड़ी से चोटी तक का जोर लगा कर पदच्युत कर दिया गया। यह इस देश के भाग्याकाश में अमंगल के धूमकेतू के रूप में जाज्वल्यमान है। यह बात किसी भी दशा में अपने आप में कितनी भयंकर लगती है जब कुरूप होने के कारण माँ को 'माँ' मानने से इन्कार कर दिया गया।

राजभाषा अधिनियम १९६३ के अन्तर्गत हिन्दी के साथ अंग्रेजी के प्रयोग को सदैव के लिए प्रयोगशील बना दिया गया। संसद में भी हिन्दी के साथ अंग्रेजी के प्रयोग को अनुमति मिल गई और कहा गया कि जब तक भारत का एक भी राज्य हिन्दी का विरोध करेगा, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन नहीं किया जाएगा। ऐसा कानून बनाकर मानो उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा का मुकुट पहनाने के मामले में प्रत्येक राज्य को वीटोपावर प्रदान करके हिन्दी के लिए सिंहासन प्राप्ति सदा-सदा के लिए असंभव बना दिया। क्योंकि उस समय देश के हिन्दी-हिमायतियों में नेहरू के विरुद्ध बात कहने का साहस ही नहीं था। राष्ट्रकवि, राष्ट्रीय लेखक, राष्ट्रीय झण्डा फहराने वाले हिन्दी-लेखकों, हिन्दी-संस्थाओं के संचालकों को काठ मार गया। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। वे नेहरू जी की भाषा में बोलने लगे, उन्हीं के अनुरूप विचार प्रकट करने लगे। हिन्दी-हितैषियों ने माँ-भारती को अभिशप्त कर दिया। किन्तु इसके विरुद्ध इतिहास इस बात का भी गवाह है कि कांग्रेसी नेताओं में माँ-भारती का सच्चा सपूत मात्र सेठ गोविन्ददास ही अग्नि-परीक्षा में सफल हुआ। उन्होंने डंके की चोट सीना तानकर राजभाषा अधिनियम १९६३ के विरुद्ध मत दिया। वे संसद में दहाड़ उठे, 'भले ही मुझे कांग्रेस छोड़नी पड़े, पर मैं आंखों देखा विष नहीं खा सकता।'

लोकतन्त्र के महान् समर्थक पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा हिन्दी को सिंहासनारूढ़ करने की अंतिम शर्त लोकतन्त्र का घोर अनादर है, डेमोक्रेसी के आधारभूत नियमों के विरुद्ध है, जम्हूरियत का गला घोंटना है। लोकतन्त्र बहुमत की बात करता है, सबके साक्ष्य की नहीं। न सारे प्रान्त हिन्दी को चाहेंगे, न हिन्दी सिंहासनारूढ़ होगी। 'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।' परिणाम स्पष्ट है – 'रानी भई अब दासी, दासी अब महारानी जी।' कांग्रेसी शासकों ने अंग्रेजों से सीखा था– 'फूट डालो और राज्य करो।' यह सिद्धान्त शासन-संचालन का ब्रह्मास्त्र है। इसी का प्रयोग कर भाषा के प्रश्न पर उत्तर-दक्षिण की बात खड़ी करके भारतीय समाज को विघटित कर दिया गया। दक्षिण भारत, संस्कृत भाषा, विद्वत्ता और अनुसंधान का गढ़ रहा है। प्राचीन संस्कृति और सभ्यता, वैदिक-साहित्य सूत्रों का अध्ययन और व्याख्या करने की क्षमता दक्षिण की बपौती रही है। दक्षिण के देवालय आज भी संस्कृति की पताका फहरा रहे हैं। वही दक्षिण भारत संस्कृत की पुत्री हिन्दी का विरोध करे, यह बात समझ से परे हैं। हाँ, राजनीति द्वारा आरोपित विष-वृक्ष फूट के फल तो लाएगा ही।

इस विधेयक में चौदह क्षेत्रीय भाषाओं-असमिया, बंगला, उर्दू, मराठी, गुजराती, पंजाबी, संस्कृत, कश्मीरी, तेलगु, सिंधी, तमिल, मलयालम, कन्नड़ और उड़िया का उल्लेख 'राष्ट्रीय भाषाएँ' कहकर हुआ है। इधर भारत सरकार कच्छप गति से राजकीय काम-काज में हिन्दी को प्रवेश दिला रही है। कुछ राज्यों ने हिन्दी को राज्य-भाषा घोषित कर दिया है। केन्द्रीय परिपत्रों को अंग्रेजी के साथ हिन्दी में प्रसारित करने का नियम लागू हो गया है। विभिन्न मन्त्रालयों में हिन्दी-प्रयोग दबे पाँव बढ़ रहा है। अनेक प्रान्तों में अंग्रेजी का पठन-पाठन विकल्प बन गया है, किन्तु ये प्रयास न ही पूर्ण है और न ही पर्याप्त है। आजादी के परवानों ने एक सपना देखा था – सोचा था – सारी विसंगतियाँ धूलिसात हो जाएंगी – आजाद देश में हमारी अपनी भाषा होगी, अपनी संस्कृति का वर्चस्व होगा, चारों ओर अपनापन छलकेगा। हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान बढ़ेगा। हर दृष्टि में हमारा मस्तक ऊंचा ही रहेगा। किन्तु क्या हुआ आजादी के बाद पहली जरूरत समस्त सरकारी काम काज में अपनी भाषा को ही अनिवार्य नहीं कर सके। कहने को हिन्दी राष्ट्रभाषा है, यदि हम वास्तव में यह चाहते हैं कि यह हिन्दी माथे की बिन्दी बन जाये तो आवश्यक है जनता और सत्ता दोनों ही मिलकर इसे सच्चे हृदय से अपनायें राजनीति के छलछद्म से दूर रखकर अब समय आ गया है कि इसे सर्वतोमना स्वीकार कर माँ-भारती का श्रृंगार करें।

– आचार्य कर्मवीर

www.thearyasamaj.org

विचारात्मक

जीवन श्रेष्ठ बनाएँ

- स्वामी रामानन्द सरस्वती

आज के युग में प्रत्येक मनुष्य दुःखी है परमात्मा द्वारा दी गई सर्वश्रेष्ठ योनि आज एक श्राप बन गई है। जिन्दगी एक बोझ बन गई है, जिसे हम ढो रहे हैं, जीवन से आनन्द तिरोहित हो गया है। इसके कारणों पर चिंतन आवश्यक है। जीवन अगर ऐसा मुद्दा है तो उसके निर्माता हम स्वयं ही है। परमात्मा ने तो हमें ऐसा जीवन दिया है जो सदा सा बसंत लगे। जीवन को सुरभित बनाए रखने के लिए परमात्मा ने अपनी वाणी (वेद) द्वारा हमें यह कला भी सिखाने का प्रयास किया। परमात्मा कहता है -

रूपेण वो रुपभभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥

परमात्मा ने जीवन को सुखद बनाने हेतु व्यवस्था दी कि प्रथमाश्रम जिसे हमने नाम दिया ब्रह्मचर्य आश्रम का जिसके द्वारा हम स्वास्थ्य एवं ज्ञान प्राप्त कर जीवन को दीर्घायु बना सकें, किन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज हम इस आश्रम की परमात्मा के निर्देशों की स्पष्ट अवहेलना कर योगाश्रम से ही प्रथम आश्रम आरंभ कर रहे हैं। बालको को आज ब्रह्मचर्य के स्थान पर व्यभिचार की शिक्षा दी जा रही है। जो लाइव शो आता है उसमें अबोध बच्चों को अश्लील नृत्य, अश्लील गाने, अश्लील संवाद सिखाए जा रहे हैं और माता-पिता बालक को संस्कार देने के स्थान पर उनमें इस भोदे तमाशे पर गर्व करते हुए तालियाँ बजा रहे हैं। अपना विनाश तो स्वयं से ही आरंभ कर रहे हैं। जीवन में दान काफी महत्व होता हैं किन्तु हम आज की अशिक्षा और अविद्या के कारण दान उन्हें देते हैं जो कुपात्र होते हैं, क्योंकि हमने ज्ञान प्राप्त किया ही नहीं। हम पाखंडियों एवं धूर्तों को दान देते हैं जो हमें पाखण्ड और अंधविश्वास के दल दल में घसीटते हैं। दान किसे देना चाहिए परमात्मा ने हमें इसकी भी शिक्षा दी है।

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं
पैतृमत्यमृषिमार्षेय ँ सुधातुदक्षिणम्।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥

ईश्वर ने जिन चार आश्रमों की व्यवस्था की है वह ज्ञान प्राप्त करने और बांटने के लिये ही दी है और इसका केन्द्र संन्यासी है। सन्यासी को बड़ा महत्व इसलिए दिया जाता है कि वह समाज का मार्गदर्शक होता है। इन सारी व्यवस्थाओं के छिन्न-भिन्न होने के कारण सब पथभ्रष्ट हो रहे हैं तो सन्यासी कहाँ अछूता बचता है।

आज संन्यास की पहचान विरक्ति, त्याग, ज्ञान, उपकार की नहीं रही है। लाल यूनिफार्म ही इसकी पहचान है। आज संन्यासी विरक्त होने की बजाय लोकेषणा वित्तेषणा में उलझ कर रह गया है। आज का बड़ा संन्यासी ज्ञान से नहीं पहचाना जाता। अपने ऐश्वर्य से पहचाना जाता है। इसके लिए जितने आश्रम हो, जितना धन हो, जितनी गाड़ियाँ हो, जितना बैंक बैलेंस हो वही पूजनीय होता है। आज का संन्यासी अपने स्वयं के प्रचार के लिए बड़े-बड़े आयोजन करता है, राजनीति करता है, ऐसे में समाज को दिशा कौन देगा ? और इसीलिए समाज आज दिशाहीन है और जीवन बोझ है। गृहस्थ आश्रम के निर्माण हेतु आवश्यक है गृहस्थ भी आदर्श पति के रूप में प्रतिष्ठित हो। यह आदर्श कैसे निर्मित हो यह ज्ञान भी परमात्मा ने हमें दिया है -

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा।
विष्णऽउरुगायैष ते सोमरत रक्षस्व मा त्व दभन् ॥

जीवन के यम, नियम आवश्यक हो। सत्य जीवन का आधार हो हिंसा न हो, स्वाध्याय हो, तप हो किन्तु हमने इसके विपरीत अपना जीवन बनाया है। धर्म के स्थान पर हमने अधर्म को ही श्रेयस्कर माना है। हिंसा को हमने अपने जीवन का आधार माना है। पल-पल हम हिंसा को प्रश्रय देते हैं। अपना लाभ दूसरों की हानि, हमारे चिंतन का प्रमुख विषय हो गया है। किसी भी सफलता को हम पचा नहीं पाते और उसकी आलोचना में ही अपने को धन्य समझते हैं। जब

www.thearyasamaj.org

हमारे विचार ही कलुषित हो जाएं तो उत्तम संस्कारित संतानों की कल्पना क्यों? गृहस्थ आश्रम जो समर्पण और त्याग का आश्रम है वह केवल भोग का आश्रम बन कर रह गया है। जीवन का लक्ष्य चार्वाक मत के अनुरूप हो गया है। विवाह एक सौदा हो गया है। ज्यादा से ज्यादा दहेज बटोरना ही इस आश्रम का उद्देश्य बन गया है। पति पत्नी में परस्पर समर्पण ही इस आश्रम को श्रेष्ठ बना सकता है और यह कैसे हो सकता है इसका भी ज्ञान वेद देता है।

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु तो दानं देवस्य
पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ ८.५१.७

पति-पत्नी दोनों का व्यवहार मित्रवत हो जीवन की हर समस्या से दोनों परिचित रहे। आपस में विश्वसनीयता हो, शंका का कोई स्थान न हो। दोनों अध्यस्य मार्गी हो जीवन में दान हो यज्ञ हो। आज तो इसके विपरीत ही स्थिति है। पति-पत्नी में तलाक आम बात हो गई है। कलह से ही जीवन आरंभ होता है। पति-पत्नी में परस्पर अविश्वास की भावना होती है। दहेज के नाम पर पत्नियों को जलाने की निर्मम प्रथा सी चल पड़ी है। जो परिवार वेदानुकूल आचरण करता है उनके ही घरों में पाप शून्य और उत्तम संतानों का जन्म होता है -

कदाचन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी।
तुरीयादित्य सवनं तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं
दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ८.५२.७

गृहस्थ प्रार्थनारत हो कि परमात्मा हमें ऐसा विचार ही न देना जो आपकी उपासना से हमें विरत करें, हम सदैव शक्तिशाली ओजस्वी बनें हमारे घर का सौंदर्य सद्गुणों से सजा हो। हमारा पालन पोषण सात्विक एवं शुद्ध अन्न से हो। किन्तु ऐसी प्रार्थना का महत्व ही समाप्त हो गया है। आज मंदिरों की भीड़ ईश्वर के प्रति आस्था का प्रतीक नहीं होती। लोग केवल अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु ऐसा ईश्वर खोजते हैं जो उनके स्वार्थ की पूर्ति कर सके। निराशा जब मिलती है तो मंदिर दर मंदिर बदलते है। ईश्वर भी बदल दिए जाते हैं। कभी पंचमुखी हनुमान की तलाश होती है तो कभी राम बदलकर शंकर की खोज होती है। शंकर बदल कर देवियों की खोज होती है और जब सारे देवता बेकार साबित होते हैं तो मजारे काम आती है। ऐसी सोच वाला जीवन कैसे सर्वश्रेष्ठ होगा।

जीवन का आदर्श यज्ञ हो, परोपकार हो और जीवन यज्ञमय हो हम इतना ही प्राप्त करने की सोचें जिससे हमारे जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो। हम दान करने के उपरांत जो बजे यज्ञ शेष ही हमारा भोजन हो। परमात्मा ने हमारे शरीर के लिए बहुत बड़ी आवश्यकताओं को नहीं रखा है। हम चिंतन करें कि हमारे शरीर की संतुष्टि के लिए परमात्मा ने बहुत ही सीमित आवश्यकताएँ निर्धारित की हैं, भोजन आप किलो में नहीं कर सकते तो ग्राम में भोजन तलाशता है। वस्त्र तो अधिक की शरीर को आवश्यकता ही नहीं है। दो जूतों से ज्यादा पैर को कुछ स्वीकार नहीं। सीमित साधनों से और सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति से शरीर संतुष्ट रहता है। परन्तु हम अविद्या में फंसकर तमाम प्रकार के भोगों की प्राप्ति के लिए जीवन को दर-दर भटका रहे हैं। हासिल क्या होता है जीवन में तनाव असंतोष और अंत में पछतावा क्योंकि जिन आवश्यकताओं की पूर्ति में हम अपना जीवन लगा देते हैं। जब उनके भोग का समय आता है तब शरीर इतना शिथिल रुग्ण हो जाता है कि हम चाहकर भी नहीं भोग पाते तो जीवन को अनावश्यक तनाव ग्रस्त न बनाकर वेद के अनुरुप ही अपना जीवन क्यों न बनाएं। जो सुख दे संतोष दे।

शरीर की आवश्यकता भोजन है और भोजन ऐसा हो जो मन को ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर करें। वेद कहता है-

यरतेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिरतस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य। शरतोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि॥

सात्विक भोजन जीवन को संतोष संयम से उत्तम बनाता है। भोजन वही उत्तम है जो कर्मेन्द्रियों को उत्तम कार्य हेतु क्रियाशील और ज्ञानेन्द्रियों को उत्तम ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रेरित करें। ऐसा भोजन स्वास्थ्य की वृद्धि एवं शक्तिवर्धक होगा। हम क्या खा रहे हैं केवल विष खा रहे हैं। हर भोजन में मिलावट, हर पेय में मिलावट जीवन का उद्देश्य भोग होने के

www.thearyasamaj.org

कारण हम अधिक धन कमाने के लिए ज्यादा नुकसान कर रहे हैं। उत्तम भोजन सात्विक शाकाहारी आहार ही मन को हिंसक बनने से रोकता है, भावनाएँ पवित्र होती है एवं विश्व बंधुत्व की भावना का उदयन होता है। इसकी पुष्टि हमारा वेद करता है -

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।
गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ८.४३.९

हमने आज मांसाहार को ही श्रेष्ठ समझा है और समझते हैं कि मांसाहार ही हमें पौष्टिक तत्व प्रदान कर सकता है। इस नासमझी का ही परिणाम है। आज का मनुष्य हिंसा को ही श्रेयस्कर समझता है और जहां हिंसा को प्रश्रय है वहाँ सौहार्द कहाँ, विश्वबंधुत्व की भावना का क्या काम। जहां जीवन में प्रेम सौहार्द और सद्भाव नहीं होगा वह जीवन श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। आज की वास्तविकता तो यह है कि हमें श्रेष्ठ जीवन से ही परहेज है तो जीवन में दुःख ही होगा। मांसाहार हमारे लिए इतने महत्त्व का हो गया है कि हमें गोमांस के सेवन से भी परहेज नहीं रहा।

आज जो गोवध बढ़ रहा है नित बड़े कत्लखाने खुल रहे हैं। उससे हमें क्या लाभ हो रहा है? उपयोगी पशुओं का वध कर हमें क्या मिलेगा ? पशु राष्ट्र की प्रगति का वाहक होते हैं और राष्ट्र की संपदा। जब किसी राष्ट्र की संपदा उसी देश के वासी समाप्त करने पर उतारु हो जाएं तो देश में समृद्धि एक सपना बन कर रह जाती है। वेद कहता है-

इम साहस्र शतधारमुत्स व्यच्यमान सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हि सीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥

गौहत्या न हो क्योंकि यह गौ तुझे अनेकों जीवनोपयोगी औषधियाँ देकर निरोग बनाती है। गौ हमारे लिए अतिथि है। गोबर खाद से कृषि की जाती है तब हमें निरोगी उत्पाद मिलता था, सात्विक अन्न से सात्विक मन बनता था।

पता - गुरुकुल आश्रम सलखिया, रायगढ़

कविता

"मैं परिवर्तन, मैं आ रहा हूँ"

गौर से देखो मैं आ रहा हूँ
धीरे-धीरे ही सही मैं आ रहा हूँ
मेरा अवतरण जैसे कोई चमत्कार है
लगता जैसे घर आया बिन बुलाए मेहमान है
पर ऐसा नहीं, मेरी अपनी तो आवश्यकता है
जिनका समाधान नहीं, उतनी यहाँ समस्या है
देखो चुपके से पल रही जमीन
धीरे से बदल रहा आसमां
है बदल रही हर चीज यहाँ
तुम्हें चिन्ह दिखाऊं मैं कहां-कहां
मेरे आने से पापी भयभीत होने लगे हैं
पुण्यात्मा-जन आशा के बीज बोने लगे हैं
असत्य का काला अंधेरा छंटने लगा है
अविद्या का साम्राज्य अब मिटने लगा है
मैं सत्य हूँ मुझे पहचानों मैं आ रहा हूँ
मैं सुन्दर हूँ सुन्दरता देखो ला रहा हूँ
सत्ययुग का फिर से समावर्तन
देखो गौर से मैं हूँ परिवर्तन
पर मेरा अस्तित्व तुमसे ही है ये जानो
बूंद बूंद से घड़ा भरे ये तुम मानो
अपने अन्दर सत्य दीप जलाए रखना
अपने आप सौन्दर्य तुममें आने लगेगा
इस आग को तुम बुझने न देना
सत्य के प्रहरी तुम, इसकी जिम्मेदारी लेना
इस मशाल को सबको थमाते जाओ
सत्य-प्रकाश से सारे जग को जगमगाओ
आँख जरा खोल देखो सत्य है वह सुन्दर है
यही तो रहस्य है बस यही रहस्य है
यही तो पुकार है, यही परिवर्तन है।
यही तो मेरा आगमन है, यही मेरा जन्म है ॥

रचयिता : जितेन्द्र कुमार शास्त्री, व्याख्याता (संस्कृत), शा. हा. स्कूल, बरबसपुर, कवर्धा (छ.ग.)

www.thearyasamaj.org

दार्शनिक

कर्म-फल मीमांसा

- महात्मा चैतन्यमुनि

गतांक से आगे

गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से साफ शब्दों में कहते है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

(गी. २-४७)

अर्थात् तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है उसके फल पर तेरा अधिकार नहीं है अर्थात् कर्मों का फल देना तो परमात्मा के अधिकार में है। इसलिए तू कर्म का हेतु तो बन सकता है मगर कर्म-फल का हेतु तू नहीं है ... श्री कृष्ण जी यह नहीं कह रहे हैं कि कर्मों का फल नहीं मिलेगा, वह तो मिलेगा ही मगर उनका कहना है कि जैसा कर्म करने वाला चाहता है वैसा ही फल मिले यह जरुरी नहीं है.... 'अमुक कर्म का मुझे अमुक फल ही मिले' ऐसी भावना व्यक्ति को नहीं करनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति ने कोई एक ही कर्म तो किया नहीं है.... जन्मजन्मान्तरों के कर्मों का एक सिलसिला है, अब यह तो परमात्मा ने ही देखना है कि उन कर्मों के संग्रह में फल किस प्रकार से फिट बैठता है...हम इच्छा करें न करें फल तो परमात्मा की न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत मिलना ही है मगर यह जरूरी नहीं कि जो फल मिलेगा वह हमरी अच्छा के अनुकूल ही हो। **महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश (सप्तम समुल्लास) में प्रश्न उठाया- जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ?** उत्तर - अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। **'स्वतन्त्रः कर्त्ता'** यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है, जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है, वही कर्त्ता है। प्रश्न - स्वतन्त्र किसको कहते हैं ? उत्तर- जिसके आधीर शरीर प्राण इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हो जो स्वतन्त्र न हो, तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जैसे भृत्य स्वामी और सेना सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारके भी अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप व पुण्य न लगे। उस फल का (भागी) भी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक-स्वर्ग अर्थात् दुःख-सुक की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे।

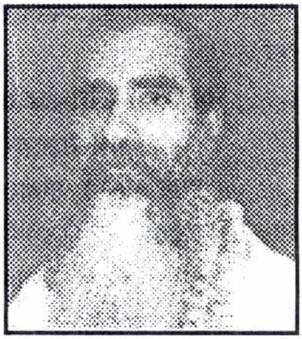

जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्र-विशेष से किसी को मार डालो, तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है, और वही दण्ड पाता है शस्त्र नहीं, वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिए अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिए कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप (के) दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है। इसी क्रम में वे आगे और प्रश्न उठाते हैं - 'जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता, तो जीव कुछ भी न कर सकता। इसलिए परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है। उत्तर - जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है। जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाए हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन है। जो कोई मन-कर्म-वचन से पाप-पुण्य करता है, वही भोगता है ईश्वर नहीं। जैसे किसी ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया। उसकी दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई। उससे किसी सिपाही ने तलवार ले ली, फिर उससे किसी को मार डाला।अब यहाँ जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उससे लेने तलवार बनाने वाले और तलवार को पकड़कर राजा दण्ड नहीं देता, किन्तु जिसने तलवार से मारा वही दण्ड पाता है, इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव को भुगाने वाला होता है।

www.thearyasamaj.org

जो परमेश्वर कर्म कराता तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इसलिए जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है ..।

कर्म स्वातन्त्रय के बारे में डॉ. राधाकृष्ण जी 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य करते हुए लिखते हैं - 'यदि ईश्वर सृष्टि को मनमाने ढंग से बना पाता तो उसमें कहीं भी बुराई न दीख पड़ती, किन्तु वह ऐसा जीवात्मा की स्वतन्त्रता छीनकर कर सकता था। परमात्मा की सृष्टि में बुराई इसलिए है कि वह जीवात्मा की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।' अन्यत्र उन्होने लिखा है - **'सृष्टि में स्वतन्त्र निर्णय लेने में समर्थ जीव है जिन्हें प्रभावित तो किया जा सकता है किन्तु वश में नहीं किया जा सकता, क्योंकि परमेश्वर तानाशाह नहीं है।'** परमात्मा सत्कर्म करने के लिए आत्मा को प्रेरणा तो देता है, आदेश तो देता है मगर इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं - 'भीतर से उद्भूत होने वाला विचार-परिवर्तन ही वास्तविक परिवर्तन है। शिक्षक का कर्तव्य अपने विचारों को थोपना नहीं, अपितु विचारों को प्रेरित करना है।' हिन्दू विचारधारा में बल या धमकी से नहीं, सुझाव व प्रेरणा से काम लिया जाता है। जीव क्योंकि कर्म करने में स्वतन्त्र है इसलिए उसे उसका फल भी स्वयं ही भोगना होता है। कुछ कर्मों का इस जन्म में और कुछ का अगले जन्म में फल मिलता है। इस सम्बन्ध में योगदर्शन (२-१३) की व्याख्या करते हुए स्वामी सत्यपति जी लिखते हैं - 'जिस कर्मसमुदाय का जाति, आयु, भोग निश्चित हो जाता है, उसको नियतविपाक और जिसके जाति, आयु और भोग निश्चित नहीं हुए, वह अनियतविपाक कहा जाता है। अनियतविपाक कर्माशय की तीन गतियाँ मानी जाती है। पहली कुछ कर्म बहुत लम्बे काल के पश्चात् फल देते हैं, कर्मों की इस गति को व्यासभाष्य में नाश के नाम से कहा गया है। दूसरी किसी प्रधान कर्म के साथ मिलकर कर्म अपना फल दे देता है। तीसरी जब प्रबल कर्म अपना फल देते हैं तो वह कर्म उनके नीचे दबा रहता है और अनुकूल वातावरण आने पर अपना फल देता है। वास्तव में कोई भी कर्म बिना फल के दिए नष्ट नहीं होता। कर्म और कर्मफल का जानना अतिपरिश्रम साध्य है। किस धर्म का क्या, कितना, कब कैसे फल मिलेगा, इसको पूर्णरूपेण ईश्वर ही जान सकता है ..' इससे स्पष्ट हुआ कि किन्ही कर्मों का फल इसी जन्म में और किन्ही का अगले जन्म में होता है। बिना भोगे कर्म कभी भी व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़ते है इस सम्बन्ध में संस्कार विधि (गृहस्थ प्रकरण) में लिखा गया है - मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आधि शीघ्र नहीं होता वैसे ही किए हुए अधर्म का फल शीघ्र नहीं होता, किन्तु धीरे-धीरे अधर्म कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है पर बिना भोगे कर्म कभी भी व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़ते हैं।' व्यक्ति स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है क्योंकि उसके कर्म ही भाग्य बनकर उसके सामने आते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कुछ कर्मों का फल इस जन्म में और कुछ अगले जन्म में मिलता है। इसलिए व्यक्ति के संचित कर्म ही उसका प्रारब्ध या भाग्य बनकर सामने आते हैं।

कर्म विपाक की दृष्टि से प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित ये तीन प्रकार के कर्म माने जाते हैं। 'प्रारब्ध' वे कर्म है जिनको भोगने के लिए आत्मा को कोई एक देह प्राप्त हुआ है, जिन कर्मों का फल उस देह के जीवनकाल में भोग लेना है। 'क्रियमाण' वे कर्म है जो इस वर्तमान जीवनकाल में किए जाते हैं, उसमें कुछ ऐसे होते हैं जो प्रारब्ध-कर्मों के फल भोगने में सहयोगी है, उनका फल प्रारब्ध कर्मों के साथ भोग लिया जाता है- कुछ ऐसे होते हैं जिनका फल उस जीवनकाल में नहीं भोगा जाता, वे 'संचित' कर्मों की राशि में जा पड़ते हैं। संचित कर्म-पहले व वर्तमान जीवन में किए गए वे कर्म हैं जिनका फल वर्तमान जीवन में नहीं भोगा जाना है बल्कि आगे भोगा जाना है ...।

पता - वैदिक वशिष्ठ आश्रम (महर्षि दयानन्द धाम), महादेव, सुन्दरनगर जिला-मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

ओ३म् क्रतो स्मर ॥ यजु. ४०/१५॥
हे कर्मशील जीव ! तू ओ३म् का सदा स्मरण कर।

www.thearyasamaj.org

सुखी होने के लिए बुराईयों को छोड़ें

- डॉ. अशोक आर्य

तात्विक

मानव प्रतिक्षण बुराईयों से घिरा रहता है, बुरा मार्ग जीवन का एक सरल मार्ग होता है, जिस पर चलकर वह शीघ्र ही धनपति बनना चाहता है, क्योंकि वह जानता है कि सुखों की प्राप्ति धन से होती है। धन की प्राप्ति तप से, पुरुषार्थ से होती है। तप व पुरुषार्थ से उतना धन नहीं मिलता, जितना पाने की वह अभिलाषा रखता है, इसलिये उसे बुराई का मार्ग पकड़ना होता है, बुरे मार्ग से वह शीघ्र ही अपार धनों का स्वामी हो जाता है, किन्तु यह अपार धन भी उसे सुखी नहीं होने देता, उसका उसे प्रत्येक समय धिक्कारता रहता है कि तूने यह धन किसी से छिना है, किसी को दुःख देकर पाया है, यह किसी दूसरे का अधिकार था, जिसे तूने ले लिया, इससे आशीर्वाद नहीं मिल सकता, यह धन कभी अपमान का, कभी तिरस्कार का कारण बन सकता है। इन विषयों को मन में ला कर वह सदा दुखी रहता, रूग्न हो जाता है, चिकित्सक उसे दूध घी आदि पदार्थों के सेवन से रोकते हैं, इस प्रकार द्वार पर खड़ी सैकड़ों गाय धन के होते हुए भी वह दूध, घी, मक्खन आदि का उपभोग नहीं कर सकता, इसलिए ही कहा गया है, कि हम अपने अन्दर से बुराईयों को निकाल बाहर करें, यजुर्वेद में भी इस विषय में ही चर्चा करते हुए इस प्रकार कहा गया है- **माँ भेर्मा संचिक्या उर्ज धत्स्व, घिषने विड्वी सति विड्येथाम, उर्ज दधाथाम, पाप्मा हटो न सोमा.** यजु. ६.५.

मन्त्र का भाव है कि - हे मानव ! तुम न तो डरो और न ही कांपो, अपने अंदर साहस (शक्ति विशेष) ग्रहण करो, हे द्युलोक और पृथ्वीलोक ! जिस प्रकार तुम दोनों दृढ़ हो, उस प्रकार हमें भी दृढ़ता दो, हमें शक्ति दो ताकि हमारे पाप नष्ट हों, किन्तु सद्गुण नष्ट न हों, यह मन्त्र हमें दो उत्तम शिक्षाएँ देता है :-

१. हम कभी डरें नहीं :- मन्त्र सर्वप्रथम यह उपदेश देता है कि हम कभी डरें नहीं तथा हम साहसी हों, स्पष्ट है कि जहां डर नहीं, वहां साहस ही काम करता है, जब तक डर है, जब तक भय है, तब तक साहस को हृद्य मंदिर का प्रवेश द्वार बंद ही मिलता है, इस कारण वह मनुष्य के हृदयों में प्रवेश कर ही नहीं सकता, ज्यों ही भय बाहर आता है तो प्रवेश द्वार खुल जाता है तथा साहस तत्काल इसमें प्रवेश कर जाता है। इसलिए ही मानव को कहा गया है कि हे मानव ! तुम डरो नहीं सदा साहसी बने रहो। जिस प्रकार भयभीत व्यक्ति के अन्दर साहस प्रवेश नहीं कर सकता, उस प्रकार ही साहसी के अंदर भय भी प्रवेश नहीं कर सकता। डरपोक व भीरू व्यक्ति भय से ही भयभीत रहता है। जो दुःख आ गया, जो कष्ट आ गया, उससे तो प्रत्येक व्यक्ति ही डरता है, उसके भय से बचने का यत्न करता है, किन्तु जो भयभीत व्यक्ति होता है, वह न आये कष्ट से ही भयभीत होता रहता है। उसे इस बात का कष्ट होता है कि कहीं उसे हानि न हो जावे, कहीं कोई चोर उसकी सम्पत्ति को न उड़ा ले जावे, कहीं कोई उसको चोट न पहुंचा देवे। इस प्रकार अनगिनत भय से वह प्रति घड़ी भयभीत रहता है। इसका कारण भी है, उसके पास जो भी आकूत धन वैभव होता है, वह दूसरे से छीना होता है, दूसरे के अधिकार पर अतिक्रमण कर पाया होता है, दूसरे के कष्टों का परिणाम होता है। स्वयं का इसमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं होता। अतः जिस प्रकार उसने यह धन अर्जित किया होता है, कोई अन्य उससे भी अधिक शक्तिशाली व्यक्ति उससे भी छीन सकता है। यह भय ही उसे सदा सताता रहता है। जो अभी जीवन में देखा नहीं, कहीं वह सामने न आ जावे, इस अनागत भय से वह भयभीत रहते हुए धीरे धीरे रोग ग्रस्त हो जाता है तथा कई बार तो अपनी जीवन लीला भी इस कारण समाप्त कर बैठता है। इसलिए वेद मन्त्र कहता है कि हे मानव ! तू जीवन में ऐसे काम कर कि भय तेरे पास न आवे। यदि तू अच्छे सादन अपनावेगा तो सदा सुखी रहेगा, किसी प्रकार का भय तेरे पास कभी न आवेगा, अच्छे काम करने से सब लोग तेरे बताये मार्ग पर बढ़ेंगे, तेरी मित्र मंडली में भी अच्छे लोगों की वृद्धि होगी, जो तेरे यश व

www.thearyasamaj.org

कीर्ति को दूर दूर तक ले जाने का कारण बनेंगे। इसलिए बुराईयों को छोड़ तथा साहसी बन।

२. पापों का नाश :- मनुष्य जो प्रतिक्षण अनागत भय से सदा कांपता रहता है, अनागत भय से ही सदा भयभीत रहता है, उसका कारण होता है उसका अपना ही पाप से भरपूर आचरण। वह अपने आचरण को पाप पूर्ण पर चलाता है, प्रति घड़ी वह दूसरों का अहित सोचता रहता है। वह स्वयं तो पुरुषार्थ करता नहीं, स्वयं तो मेहनत करता नहीं किन्तु अत्यधिक धन वैभव को प्राप्त करने के लिये दूसरों के पुरुषार्थ से प्राप्त धन को बलात् छीनने का यत्न करता है दूसरे की सम्पत्ति को स्वयं पाने के लिये गलत मार्ग पर चता है। इस निमित लूट-पाट तथा मार-काट तक की चिंता नहीं करता, अनेक बात तो वह अपने ही सगे-सम्बन्धियों की सम्पत्ति पाने के लिए उनका वध तक करने में भी संकोच नहीं करता। अर्थात् रिश्तों से अधिक वह संपत्ति को, धन को अधिमान देने लगता है, इस प्रकार से हस्तगत हुई सम्पत्ति ही उसकी चिंता का कारण बन जाती है। ऐसा कोई क्षण नहीं होता, जब उसको यह चिंता न सता रही हो कि उसने जो सम्पत्ति दूसरे से अर्जन की है, वह अपनी इस सम्पत्ति को वापस पाने के लिए अपने आप को सशक्त कर अथवा किसी शक्ति का सहयोग ले उसे भी हानि न पहुंचा देवें, उससे अपनी सम्पत्ति पुनः वापिस न छीन लेवें, उसका किसी सभा में अपमान न कर देवें। यह चिंता उसे अन्दर ही अन्दर खाते हुए रोगी कर देता है, अन्दर से खोखला कर देती है, जिस कारण वह खाना-पीना तक छोड़ देता है। फिर इस प्रकार से अर्जित की संपत्ति का उसे क्या लाभ ?

जब वह इस सम्पत्ति को बिना पुरुषार्थ के प्राप्त करता है तो अनेक प्रकार के दुर्व्यसन भी उसे घेर लेते हैं, भयभीत अवस्था में रहने के कारण वह इस भय से मुक्त होने के लिए प्रयास करता है, किन्तु भय है कि उसका पीछा ही नहीं छोड़ता। इस भय से बचने के लिए तथा उड़ी हुई नींद को पाने के लिये उसे अनेक प्रकार की बुराईयों का सहारा लेने के लिए बाधित होना पड़ता है। इन बुराईयों में जो बुराई उसे सबसे सरल लगती है, सर्वप्रथम उसे अपने जीवन का अंग बना लेता है, इस बुराई का नाम है नशा, वह नशा करने लगता है। नशा में वह आरम्भ तो शराब व तम्बाकू से करता है, किन्तु धीरे धीरे सब प्रकार के नशों का वह आदि हो जाता है। उसकी मित्र मण्डली में भी इस प्रकार के लोग ही आ जाते हैं जो तम्बाकू, शराब, स्मैक का नशा लेते हैं तथा जुआं खेलते व वेश्यागमन भी करते हैं। वह भी उन सब का साथ बखूबी निभाने लगता है, जिससे उसके अन्दर से दया की भावना चली जाती है तथा जो धन उसने दूसरे पर क्रूरता करके छीना था, वह भी धीरे धीरे लुप्त होने लगत है, उसके परिवार व मित्रों में भी उसके साथ लड़ाई झगना व कलह होने लगती है, परिवार की शान्ति भी नष्ट हो जाती है। शान्ति के नष्ट होने का प्रभाव स्वास्थ्य पर भी पड़ने लगता है, स्वास्थ्य भी धीरे धीरे गिरने लगता है, इन्द्रियाँ शिथिल होने लगती है तथा चारपाई ही उसका सहारा बन जाती है।

जब वह दुर्व्यसनों में फंस जाता है तो उसकी सात्विक वृत्ति नष्ट हो जाती है थ, जिससे उसका हृदय निर्बल हो जाता है। उसका मनोबल भी धीरे धीरे गिरता ही चला जाता है, इतना ही नहीं उसके शरीर के मुख्य अंग कांपने लगते हैं, जिससे मनोबल ही नहीं रहा, शरीर के सब बल, सब शक्तियां निश्चित रुप से ऐसे व्यक्ति का साथ छोड़ जाती है।

यदि अपने हृदय को साहस से भरपूर रखोगे, अपने शरीर में शक्ति तथा उत्साह बनाए रखोगे तथा आने वाली विपत्ति का प्रतिकार करने के लिए तैयार रहोगे, तो तुम्हारा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। कहा भी है कि जब मनुष्य में साहस आ जाता है, जब मानुष में शौर्य आ जाता है, जब उसमें वीरता आ जाती है, तो उसका सब भय स्वयं ही काफूर हो जाता है। इसलिए नीति शास्त्र यह शिक्षा देता है कि भय से तब तक ही डरो, जब तक वह दूर है, किन्तु भय के समीप आने पर उससे छुपाने से वह हमारे नाश का कारण होता है। अतः भय समीप आने पर उसका तत्काल प्रतिकार करो, प्रतिकार के लिए हमारी बुद्धि तत्काल जो भी उपाय बताये, उस पर चलते हुए उसका प्रतिकार करो, उसका मुकाबला करो। साहसी बनकर जब मुकाबला करोगे तो भय टिक न पायेगा तथा आपसे दूर भाग जावेगा। आचार्य विष्णु शर्मा ने

www.thearyasamaj.org

एक राजा के बिगड़े हुआ राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए एक नीति ग्रन्थ की रचना की थी, जिसका नाम रखा था, हितोपदेश। संस्कृत में लिखे इस ग्रन्थ में उसने पशुओं व पक्षियों की कहानियों के माध्यम से नीति के गहन विषयों को बड़ी सरल भाषा में समझाया है, इस ग्रन्थ में ही एक स्थान पर लिखा है -

तावद भयाद् न भेतव्यं, यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य, नरः, कुर्याद यथोचितम्..

हितोपदेश मित्र ५६.

३. पाप नष्ट हो :- मन्त्र कहता है कि मानव के सुखी जीवन के लिए उसे पापमुक्त होना आवश्यक है। हमने देखा है कि पापपूर्ण आचरण ही उसके दुखों का कारण होता है, जबकि सद्गुण उसके धन ऐश्वर्य व कीर्ति को बढ़ाने वाला होता है, इसलिए मन्त्र कहत है कि हे प्रभु ! हमारे पापाचरण को दूर कर हमारे सद्गुणों को बढ़ाईये, ताकि हम सब प्रकार के भय से मुक्त हो निर्भय हो जावें, हम जानते हैं कि पाप का भय से सीधा सम्बन्ध होता है।

हम देखते हैं कि एक कुत्ते को भी जह हम रोटी डालते हैं तो वह दुम हिलाते हुए हमारे समीप बैठ कर बड़े जाव से उस रोटी को खाता है, किन्तु वही रोटी जब वह पापपूर्ण आचरण को अपनाते हुए कहीं से चुरा कर लाता है, वह रोटी को उठा कर कहीं दूर किसी कोने में छुप कर खाता है क्योंकि वह जानता है कि यदि पकड़ा गया तो मार पड़ेगी। एक कुत्ता जब पाप के मार्ग से इतना भयभीत है तो मनुष्य क्यों न होगा ? इसलिए प्रभु से प्रार्थना की गयी है कि वह हमें पाप के मार्ग से हटा कर सन्मार्ग पर लावे। हमें निर्भय बनावें, पापों को नष्ट करने से ही मानव निर्भय होता है। हम अपने जीवन से पाप पूर्ण आचरण को निकाल कर निर्भय होकर सब जीवन व्यापार करेंगे तो हम मन्त्र की धारणा के अनुसार जीवन यापन कर सुखों को पाने में सफल होंगे।

पता : १०४, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी गाजियाबाद उ.प्र.

-: कविता :-

"ये जिन्दगी"

बात अधूरी, आधी बात की है, जिन्दगी।
पूरी न हो सकी, वही बात, मेरी जिन्दगी।
खामोश रह, कुछ न बोल, मेरी जिन्दगी।
न जाने किस मोड़ पर ले आई ये जिन्दगी।
नदी सी उफनती चली, हाय ! मेरी जिन्दगी।
तूफान में थोड़ा अटकती सी ये जिन्दगी॥
बात अधूरी, आधी बात की है, जिन्दगी।
पूरी न हो सकी, वही बात, मेरी जिन्दगी।
थोड़ा शांत, थोड़ा निश्चल हुई ये जिन्दगी।
तभी भयानक रात, ले आई मेरी जिन्दगी।
रात के बाद लाई नई सुबह जिन्दगी।
आगे बढ़ने की है ये बात मेरी जिन्दगी॥
बात अधूरी, आधी बात की है, जिन्दगी।
पूरी न हो सकी, वही बात, मेरी जिन्दगी।
कभी मंजिल पास दिखती है ये जिन्दगी।
कभी मंजिल से दूर ले जाती मेरी जिन्दगी।
साथ कई किरदार, निभाती चली जिन्दगी।
कदम-कदम पर, नया मोड़ लेती मेरी जिन्दगी॥
बात अधूरी, आधी बात की है, जिन्दगी।
पूरी न हो सकी, वही बात, मेरी जिन्दगी।
फूलों के साथ कांटे लाती है ये जिन्दगी।
कांटो में चलना भी सिखाती मेरी जिन्दगी।
कभी कच्ची राह चलाती है ये जिन्दगी।
कभी पैर-पंख लगाती मेरी जिन्दगी॥
बात अधूरी, आधी बात की है, जिन्दगी।
पूरी न हो सकी, वही बात, मेरी जिन्दगी।
अतीत की यादें संजोए मेरी जिन्दगी।
भविष्य के लिए है, चिंतित जिन्दगी।
हाय ! जिन्दगी ये कैसी मेरी जिन्दगी।
जैसी भी है, खूबसूरत है मेरी जिन्दगी।
बहुत प्यारी, सबसे न्यारी है ये जिन्दगी॥
बात अधूरी, आधी बात की है, जिन्दगी।
पूरी न हो सकी, वही बात, मेरी जिन्दगी।

रचयिता -श्रीमती शीतल वाही, डी.ए.व्ही. इस्पात, पब्लिक स्कूल, नंदिनी माइस, जि.दुर्ग

www.thearyasamaj.org

विचारात्मक

आओ चलें स्वर्ग की ओर

- डॉ. दिव्येश्वर शास्त्री, छ.ग. आर्यवीर दल बौद्धिकाध्यक्ष

अधिकांश लोगों का मानना यह है कि स्वर्ग एक स्थान विशेष है जो कि आकाश या पाताल में है जिसे पुराणों में बैकुण्ठपुर कहते हैं। बैकुण्ठ में जाने के बाद व्यक्ति को हर प्रकार के सुख सामग्री भोग के समस्त साधन उपलब्ध रहते हैं, किसी भी प्रकार से दुःख दर्द क्लेश नहीं होता। वह हमेशा भोगों के आनन्द में डूबा रहता है, इस प्रकार की मान्यता आमलोगों में है, किन्तु वेदादि सत्य शास्त्रों में स्वर्ग "सुख विशेष" को कहा है। वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कहा- **"जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होता है वह स्वर्ग कहाता है। तथा जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री की जीव को प्राप्मत होता है वह नरक कहाता है।"** शास्त्र और ऋषियों के अनुसार संक्षेप में जहां सुख है वहां स्वर्ग और जहां दुःख है वहां नरक है। इस प्रकार स्वर्ग की वास्तविकता को जानने के बाद हर कोई स्वर्ग जाना चाहेगा अर्थात् सुख विशेष को प्राप्त करना होगा। उसका भी उपाय ब्राह्मण ग्रन्थ में बतलाया गया है- **"स्वर्गकामो यजेत अग्निहोत्रं जुहूयात् स्वर्गकामः ।।"** अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाले को अग्निहोत्र करना चाहिए। सुख प्राप्ति के सर्वोत्तम साधन अग्निहोत्र (हवन) को शास्त्रों में बतलाया है। क्योंकि अग्निहोत्र करने से वायुमण्डल, अन्न, जल, शरीर और औषधि आदि पदार्थों की शुद्धि होती है। शुद्ध, अन्न, जल, वायु आदि के सेवन से व्यक्ति पूर्णरूपेण स्वस्थ हो जाता है और शरीर इन्द्रियों की स्वस्थता से व्यक्ति सुख की अनुभूति करता है। सुखानुभवी व्यक्ति ही सच्चे आर्यों में स्वर्ग निवासी या बैकुण्ठवासी है। अग्निहोत्र के अनेक लाभ है अथर्ववेद में तो यहां तक कहा है- यत्रकुण्ड में डाली हुई हवि सभी प्राणियों के दुःख देने वाले रोगों को ऐसा बहाकर ले जाती है जैसे नदी झाग को बहाकर ले जाती है। यथा -

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ।।

अग्निहोत्र में जो आहुतियाँ डाली जाती है वे वायुमण्डल से सूर्य में पहुंचती है और सूर्य की आकर्षण शक्ति से पृथ्वी के जल वाष्पित होकर आकाश मण्डल में जाता है, पुनः वर्षारुप में वह शुद्ध जल पृथ्वी पर आता है उसी वर्षा से उत्पन्न अन्न, फल, औषधि की उत्पत्ति होती है। इसी अन्न, जल, औषधि को सेवन करके प्राणी जीवित रहते हैं।

अग्निहोत्र (हवन) के अनेक लाभ है नियमित अग्निहोत्र घर में किसी प्रकार रोग नहीं होते हैं, अग्निहोत्र जब किया जाता है तो सभी कुटुम्बी परिजन एकत्रित होते हैं। इस अवसर पर साधु, संत, महात्मा, पुण्यात्मा, वेदपाठी, धार्मिक व्यक्तियों का दर्शन लभा होता है, क्योंकि धार्मिक व आप्त व्यक्तियों के दर्शन से और उनके द्वारा उपदिष्ट वचनों के श्रवण से भी अनेक तीर्थों का पुण्यफल प्राप्त होता है। यह श्रावण मास भी यथा नाम तथा गुणवाला है। श्रावण मास हमें यह सन्देश देती है कि हम वेद दर्शन, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि शास्त्रों का श्रवण करें। श्रवण से ही श्रावण या श्रावणी बना है। आद्य ऋषि मुनियों ने श्रावण मास को सर्वोत्तम कहा है क्योंकि यही वह माह है जो हर ग्राम में, नगर में, घर में लौकिक वैदिक शास्त्रों का श्रवण मनन होता है।

श्रावण मास में हमें वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रवण मनन करना चाहिए। अग्निहोत्र के माध्यम से वेदों में वर्णित दिव्य रोग नाशक मन्त्रों का गान या पाठ करें। एकमात्र अग्निहोत्र ही है जो वेदों के दिव्य मन्त्रों से आहुतियाँ चढ़ाई जाती है। किन्तु आजकल तथाकथित ब्राह्मण, पुरोहितगण, मन्त्रहीन अग्निहोत्र का अनुष्ठान करते हैं जिसका हमें पुण्यफल प्राप्त नहीं होता। अग्निहोत्र मन्त्रसहित न होने के कारण आज वेद मन्त्रों का सही उच्चारण नहीं हो पा रहा है। वेदों के

www.thearyasamaj.org

पठन-पाठन, श्रवण-श्रावण का अभाव देखा जा रहा है। वेद पाठ की अनेक विधियाँ लुप्त होती जा रहा है। वेदों में वर्णित मन्त्रों के लाभ से हम वञ्चित होते जा रहे हैं। जिसके कारण दुःख अशान्ति और रोगों का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है। इसीलिए तो शास्त्रों में यज्ञ (हवन) को स्वर्ग का साधन कहा है। शतपथ ब्राह्मण नेतोस्पष्ट कहा है - **नौर्हवा एषा स्वर्ग्या यदग्नि होत्रम्।** अर्थात् यह अग्निहोत्र स्वर्ग की नौका है। अतः भारतवर्ष के सभी नर-नारियों स्वर्ग जाने के लिए अग्निहोत्ररूपी नाव में सवार होना चाहिए। अर्थात् नित्य प्रति दैनिक या मासिक पाक्षिक, वार्षिक किसी भी रूप में वेदमन्त्रों से ही अग्निहोत्र का अनुष्ठान करना चाहिए, इससे वेदों की रक्षा होगी, धर्म की स्थापना होगी, परिवार, घर, समाज संगठित होंगे। ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना के साथ-साथ शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की शुद्धि होगी। प्राणीमात्र का कल्याण होगा। सुख, शान्ति, समृद्धि की वर्षा होगी। कहीं भी अकाल (अभाव) नहीं होगा। आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक आदि दुःखों की निवृत्ति होगी। हम सदा सुखी और निरोगी रहेंगे। अतः आइये, स्वर्ग जाने का अर्थात् अग्निहोत्र करने का सुसंकल्प लेवें।

यज्ञ हवन के करने से, मिटे सकल दुःख द्वन्द।
मेघ वृष्टि ही सृष्टि पर, आवें अति आनन्द॥

पता : वैदिक सदनम्, पंचधार सरिया, रायगढ़ (छ.ग.)

गुस्सा - अक्ल को खा जाता है।
अहंकार - मन को खा जाता है।
चिन्ता - आयु को खा जाता है।
लालच - ईमान को खा जाता है।

व्यवहार चातुर्य

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं कर्मेण, द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णा समैर्बान्धवान्।
अत्युग्रस्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं, विद्याभिः रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद् वशम्॥

(वाल्मीकि)

भावार्थ *- मित्र को अत्यन्त व्यवहार से वशीभूत किया जा सकता है। और शत्रु को नीति से, सामदण्डादि के बिना शत्रु कभी अपने आधीन नहीं हो सकता है और जो पुरुष लोभी है वह धन के द्वारा सन्तुष्ट हो जावेगा। अपने अफसर का कार्य आप अधिक से अधिक कर दीजिए वह प्रसन्न हो जावेगा। ब्राह्मण का आप हृदय से सन्मान कीजिए वह तृप्त होकर आशीर्वाद ही देगा और युवती स्त्री को आप केवल प्रेम भरी एक ही दृष्टि से देख डालिए वह आपकी हो जावेगी। युवती तो प्रेम ही चाहेगी उसे संसार की किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं ? वह तो प्रेम की ही भूखी होती है और बान्धवजन क्या चाहते है भला आपसे तो सम्मानजनक व्यवहार की ही अपेक्षा रखते हैं। और जो महाक्रोधी मनुष्य है, उसे आप प्रशंसा से ही वशीभूत कर सकते हैं। गुरुजन तो केवल अभिवादन से प्रसन्न हो जाते हैं। मूर्ख मनुष्य को आप कहानियां सुनाते जाइए वह प्रसन्न हो जावेगा और विद्वान तो केवल विद्या की ही पिपासा रखता है। आप विद्याभ्यासी, मनीषी बनिए वह आपसे प्रेम करने लगेगा। जो रसिक पुरुष हैं, उन्हें तो रस ही चाहिए। काव्यामृत के पान, सङ्गीतादि के श्रवण से वे परितृप्त किए जा सकते हैं और यदि आप संसार में सभी को अपने वश में करना चाहते हैं तो शील से बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है ? साधुता से कुलीनता से आप भी सबका हृदय जीत सकते हैं।*

- सुभाषित सौरभ

www.thearyasamaj.org

१७ सितम्बर विश्वकर्मा जयन्ती पर विशेष-

वैदिक साहित्य में विश्वकर्मा का स्थान

- आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी

वैदिक वाङ्मय में विश्वकर्मा शब्द का व्यापक अर्थ है। यह शब्द गुणवाचक है व्यक्तिवाचक नहीं। अतः इस शब्द से किसी निश्चित विश्वकर्मा का ज्ञान न होकर अनेक विश्वकर्माओं का ज्ञान होता है। तद्यथा - सृष्टि रचयिता परमपिता परमात्मा, शिल्पशास्त्र के आविष्कर्त्ता व सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता ऐतिहासिक महापुरुष विश्वकर्मा तथा सूर्य, वायु, अग्नि, पृथिवी व वाणी आदि जड़ चेतन रुप में अनेक विश्वकर्मा हैं।

*वेद के विश्वकर्मा शब्द से ज्ञात परमपिता उसके द्वारा रचित सूर्य, वायु, अग्नि आदि विश्वकर्मा व ऐतिहासक महापुरुष शिल्पशास्त्र के ज्ञाता विश्वकर्मा, ये समस्त ही विश्वकर्मा हमारे जिज्ञास्य हैं हम इन्हें जानने का समुचित प्रयत्न करें। निरुक्तकार महर्षि यास्क विश्वकर्मा शब्द का यौगिक अर्थ लिखते हैं - '**विश्वानि कर्माणि येन यस्य वा स विश्वकर्मा, विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता**' जगत् के सम्पूर्ण कर्म जिसके द्वारा सम्पन्न होते हैं अथवा सम्पूर्ण जगत् में जिसका कर्म है वह सब जगत् कर्ता विश्वकर्मा है। विश्वकर्मा शब्द के इस यथार्थ अर्थ के आधार पर विविध कला कौशल के आविष्कारक यद्यपि अनेक विश्वकर्मा सिद्ध हो सकते हैं।*

विश्वकर्मा वेद का शब्द है। यह वेद से लेकर ही लोक में प्रयुक्त हुआ। वेद के सभी शब्द यौगिक है अथवा योगरुढ़ि किन्तु कोई भी शब्द वेद में रूढ़ि नहीं है। वेद के प्रत्येक शब्द का अर्थ उस शब्द के अन्दर ही निहित है उसे समझने के लिए हमें उस शब्द के अन्दर प्रविष्ट होना पड़ेगा। शब्द के अन्दर प्रविष्ट होकर उसके धातु, प्रत्यय का विभाग करके स्वाभाविक मूल अर्थ को जानने का नाम ही यौगिक प्रक्रिया है। वेदसम्मत इस यौगिक प्रक्रिया से शब्द का जो अर्थ जाना जाता है वह वास्तविक व अपरिमित होता है। इसके विपरीत वेद के शब्द लोक में प्रयुक्त होने पर जब अपने वास्तविक शब्द से हटकर किसी भी निश्चित किए गए अन्य अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं तब उन्हें रूढ़ि शब्द कहते हैं। उदाहरण के लिए एक लोक प्रसिद्ध शब्द पंकज का यौगिक अर्थ करने पर पंक अर्थात् कीचड़ में उत्पन्न होने वाले पौधे कमल आदि सभी को ग्रहण होता है किन्तु यदि यही पंकज नाम किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का रख दें तो यह शब्द रूढ़ि ही कहलाएगा और अपने वास्तविक स्वाभाविक अर्थों को छोड़कर किसी निश्चित किए हुए व्यक्ति अथवा वस्तु के लिए संकुचित अर्थ में रुढ़ हो जाएगा। वेद का विश्वकर्मा का वाचक न होकर यौगिक प्रक्रिया से अपने स्वाभाविक अर्थ द्वारा सृष्टिरचयिता परमपिता परमात्मा व उसके द्वारा रचित, सूर्य, वायु, अग्नि आदि वैदिक पदार्थों का बोध कराता है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में जैसे कोई वादित्र=बाजा बजाए या कठपुतली को चेष्टा कराये ठीक उसी प्रकार अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा नामक चार ऋषियों को साधन बनाकर सब मनुष्यों के हितार्थ अपने ज्ञान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद का प्रकाश करता है। प्रभु वेदों का यह ज्ञान प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में ठीक इसी प्रकार का देता रहा है व सदैव देता रहेगा। उसमें कभी किञ्चित् परिवर्तन नहीं करता। इस नित्य ज्ञान वेद में देश काल आदि से सीमित किसी व्यक्ति, स्थान या इतिहास का वर्णन नहीं है। यदि वेद का ज्ञान सार्वकालिक अनादि व अनन्त है और महापुरुष उत्पत्ति व मरणधर्मी हैं तो नित्यज्ञान वेद में अनित्य महापुरुषों की कथा कैसे सम्भव है ? अतः हमें दशरथनन्दन राम, योगिराज कृष्ण व शिल्पशास्त्र के ज्ञाता विश्वकर्मा आदि महापुरुषों का मानवीय इतिहास इतिहासादिक ग्रन्थों में ही ढूंढना चाहिए वेद में नहीं।

वेद के विश्वकर्मा शब्द से ज्ञात परमपिता उसके द्वारा रचित सूर्य, वायु, अग्नि आदि विश्वकर्मा व ऐतिहासक महापुरुष शिल्पशास्त्र के ज्ञाता विश्वकर्मा, ये समस्त ही विश्वकर्मा हमारे जिज्ञास्य हैं हम इन्हें जानने का समुचित प्रयत्न करें। निरुक्तकार महर्षि यास्क विश्वकर्मा शब्द का यौगिक अर्थ लिखते हैं - **'विश्वानि कर्माणि येन यस्य वा स**

www.thearyasamaj.org

विश्वकर्मा, विश्वकर्मा सर्वस्य कर्त्ता' जगत् के सम्पूर्ण कर्म जिसके द्वारा सम्पन्न होते हैं अथवा सम्पूर्ण जगत् में जिसका कर्म है वह सब जगत् कर्ता विश्वकर्मा है। विश्वकर्मा शब्द के इस यथार्थ अर्थ के आधार पर विविध कला कौशल के आविष्कारक यद्यपि अनेक विश्वकर्मा सिद्ध हो सकते हैं तथापि सर्वाधार सर्वकर्ता परमपिता परमात्मा ही सर्वप्रथम विश्वकर्मा है। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ के मतानुसार '**प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्माऽभवत्**' प्रजापति परमेश्वर प्रजा को उत्पन्न करने से सर्वप्रथम विश्वकर्मा है। वेद में परमेश्वर के विश्वकर्तृत्व का अद्भुत व मनोरम चित्रण विश्वकर्मा नाम लेकर अनेक स्थानों पर किया गया है। सृष्टि का मुख्य निमित्त कारण परमात्मा ही है। वही सब सृष्टि को प्रकृति से बनाता है जीवात्मा नहीं है। इस कारण सर्वप्रथम विश्वकर्मा परमेश्वर है। परमेश्वर ने जगत् को बनाने की सामग्री प्रकृति से सृष्टि की रचना की है एतद्विषयक निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टव्य है -

किं स्विदासीदाधिष्ठानमारभ्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमि जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ।। ऋ. १०/८१/२

अर्थात् जगत् को उत्पन्न करने में कौन सा अधिष्ठान था, इसे आरम्भ करने का कौन सा मूल उपादानकारण जगत् को बनाने की सामग्री थी कि जिससे विश्वकर्मा परमेश्वर ने भूमि और द्यौलोक को अत्यन्त कौशल से उत्पन्न किया। सर्वद्रष्टा परमेश्वर ही अपने महान् ज्ञानमय सामर्थ्य से प्रकृति को गति देकर विकसित करके सृष्टि की रचना करता है। उसके विश्वकर्मत्व को देखकर बड़े-बड़े विद्वान आश्चर्य करते है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी परमेश्वर की सृष्टि रचना का वर्णन सत्यार्थ प्रकाश में निम्नलिखित शब्दों में करते हैं - देखो ! शरीर में किस प्रकार की ज्ञान पूर्वक सृष्टि रची है कि विद्वान लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरुप मूल रचन लोग नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषप्ति अवस्था भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है ? इसके बिना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार के वटवृक्ष आदि के बीजों में अतिसूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत कृष्ण चित्र मध्यरुपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द मूलादि रचन, अनेकानेक करोड़ों भूगोल, सूर्य चन्द्रादि लोक निर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना। आदि परमेश्वर के बिना कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार वेद व सृष्टि की रचना का अद्भूत सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है इसलिए सर्वप्रथम विश्वकर्मा वहीं है। परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव होने से उसके विश्वकर्मा नाम की भांति सच्चिदानन्द स्वरुप, निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु व सृष्टिकर्त्ता आदि अनन्त नाम हैं किन्तु उसका मुख्य नाम ओ३म् है यह ध्यान रखना चाहिए।

विश्वकर्मा परमेश्वर ने जगत् में अनेक पदार्थ रचे हैं। उन पदार्थों में परमेश्वर ने जितने-जितने दिव्यगुण स्थापित किए हैं उतने-उतने ही दिव्यगुण हैं न उससे अधिक और न न्यून। उन दिव्य गुणों के द्वारा विश्व में अपना-अपना कर्म करने से अग्नि, सूर्य आदि जब पदार्थ भी विश्वकर्मा कहलाते हैं। शतपथ ब्राह्मणग्रन्थ में '**विश्वकर्मायमग्निः**' वाक्य से अग्नि को विश्वकर्मा कहा है। गोपथ में '**असौ वै विश्वकर्मा योऽसी सूर्यः तपति**' कहकर विश्व को प्रकाशित करने के कर्म से सूर्य को विश्वकर्मा कहा है। वैदिक साहित्य में इसी प्रकार से वायु, पृथिवी व वाणी आदि तीनों लोकों के अनेक दैविक पदार्थों को विश्वकर्मा शब्द से व्यक्त किया गया है। हमें इन पदार्थों के दिव्य विश्वकर्मत्व को जानकर विद्या, विज्ञान की वृद्धि करनी चाहिए। सृष्टि के आरम्भकाल में मनुष्य के पास नामकरण के कोष के रुप में केवल वेद थे।

"नमस्ते"

अन्य प्रकार से तिरस्कार।
बोले नमस्ते करे उसे स्वीकार।
जो ये बोले "नमस्ते" वह है महान ।।

- राजकुमार भल्ला, माडल टाऊन, भिलाई (छ.ग.)

www.thearyasamaj.org

वेद ही शिक्षा नीति का आधार हो

शैक्षणिक

क्या कहे अहबाब क्या कारेनुमाया कर गये
बी ए हुये, नौकर हुये, पिनशन मिली औ मर गये

हमारी शिक्षा प्रणाली पर महान व्यंग्यकार अकबर इलाहाबादी का उक्त शेर सोलह आना सही बैठता है बल्कि इससे अच्छी टीका कहीं देखने में भी नहीं आई। अकबर इलाहाबादी का यह शेर आज से कोई पचास साल पहले का लिखा हुआ है। गम्भीर से गम्भीर तत्व की बात अकबर ने जितने सरल रूप में कही है, आश्चर्यजनक है। अकबर का इशारा साफ है, वे कहना चाहते हैं कि शिक्षा को पेट से बांध दिया गया है, उसका उद्देश्य केवल खाना-कमाना और मर जाना रह गया है।

देश के स्वाधीन होने के बाद से अब तक जितने भी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री हुए हैं, शिक्षा-प्रणाली की आलोचना करते रहे हैं, परन्तु परिणाम वही ढाक के तीन पात। बहुउद्देशीय शिक्षा प्रणाली, दस-जमा-दो इत्यादि प्रयोग भी किये जा चुके हैं। उनकी परिणति जो होनी थी वही हुई। शिक्षा को लेकर इन दिनों नवीनतम विचार चल रहा है, वह रोजगार मूलक शिक्षा पर आधारित है।

हम वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिये लार्ड मेकाले को कोसते हुए अघाते नहीं है, परन्तु पिछले ६६ वर्षों में हमने क्या किया, इसकी जवाबदारी उठाने को कोई तैयार नहीं है। मैकाले को भी सिर्फ इसलिये दोष देते हैं कि हमें कोई जवाबदारी न उठानी पड़े। वरना मैकाले को दोष देना कोई मायने नहीं रखता। मैकाले ने वही शिक्षा प्रणाली हमारे देश में लागू की जो उनके देश ब्रिटेन में उस समय था। अन्तर केवल राष्ट्रीय परिस्थितियों का और आर्थिक उतार-चढ़ाव का ही है। अलबत्ता भाषा उसकी अंग्रेजी है। क्या भाषा के लिये भी मैकाले को दोष देना होगा ? यह तो ऐसी चीज है कि बदली जा सकती है। हाँ, देशवासी ही अंग्रेजी न छोड़ना चाहे या शासकों में ही संकल्प न हो तो फिर मैकाले को कोसना ही एकमात्र उपाय है। खिसियानी बिल्ली खंभा ही नोचती है।

हम तो अभी तक भी तय नहीं कर पाये कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है ? क्या शिक्षा का प्रयोजन मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करना है ? क्या शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अभिव्यक्ति को बल देना है ? क्या शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य का संस्कार करना है ? क्या इसका अभिप्राय पेट भरना है ? जब कभी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन का विचार नौकरशाह करने लगते हैं और देश का दुर्भाग्य है कि यह काम नौकरशाही से ही चलता है, कभी यह तय नहीं किया जाता कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है ? जब कुछ नहीं सूझता या कुछ नहीं सोचा जाता तो देश में चारों ओर पनप रही बेकार शिक्षितों की भीड़ कचौटने लगती है और शिक्षा को रोजगारमूलक बनाने का विचार चल पड़ा है। विचार की परिभाषा बदल जाती है।

शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?

प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा का उद्देश्य रोजगार देना है ? यदि ऐसा ही है तो फिर शिक्षा की आवश्यकता क्या रह जाती है ? रोजगार तो शिक्षा विहीन लोग भी करते हैं और अच्छा करते है। दूसरा प्रश्न है कि रोजगार का मतलब नौकरी ही क्यों ? यह सच है कि जीविका उपलब्ध होना आवश्यक है जीविका का प्रबंध हुए बिना सभी बड़ी बड़ी बातें फीकी लगती है, सुहाती नहीं। फिर प्रश्न उठता है कि जीविका का मापदण्ड क्या हो ? क्या वह रोटी, कपड़ा और मकान तक सीमित है ? एक प्रश्न यह भी है कि रोटी, कपड़ा और मकान का ही यदि प्रश्न है तो वह केवल शिक्षितों के ही सामने नहीं है। अशिक्षित लोग भी रोटी, कपड़ा और मकान के अधिकारी है। कुल मिलाकर देखें तो यह मुद्दा आर्थिक है, शैक्षणिक कदापि नहीं है। भला इसी में है कि शिक्षा नीति को पेट से बाहर निकाला जाय और अर्थनीति को पेट से जोड़ दिया जाय। शिक्षा नीति को लेकर अब तक जो भी भूल-भूलैया बनी हुई है, उसका समाधान तब तक नहीं होगा जब तक कि उस पेट से बांधे रखेंगे। एक पीढ़ी तक एक युवक को शिक्षा देने की व्यवस्था सरकार करे और उसके बाद उसका अपने

www.thearyasamaj.org

का जुगाड़ भी सरकार करे अर्थात् नौकरी दे, तो यह कुचक्र कभी बंद ही नहीं होगा। अभी यही तो हो रहा है। हाईस्कूल तक यदि किसी किसान के लड़के ने पढ़ाई कर ली, तो हल को हाथ लगाना छोड़ दिया, खाती का लड़का लकड़ी को भूल गया और लुहार के लड़के ने लोहे से मुंह फेर लिया। उसको नौकरी चाहिए। नौकरी मिल भी गई तो वह कैसी होगी, और उसकी जिन्दगी की जो तस्वीर बनेगी वह कैसी होगी। कहने की आवश्यकता नहीं। हाईस्कूल पढ़ा लिया नौकर क्या कभी अपने या अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकेगा ? अलबत्ता वह अपना पारिवारिक धंधा छोड़ बैठेगा। हो सकता है घर भी छोड़ दे और शहरों में जाकर गन्दी बस्तियों की आबादी बढ़ाए। यही तो हो रहा है प्रतिदिन। कोई भी रोजगार मूलक शिक्षा देश को इस दुर्गति से छुटकारा नहीं दिला सकती।

अब फिर मैं मैकाले पर विचार करना चाहूंगा। हमारे यहां जो शिक्षा प्रणाली मैकाने ने प्रारम्भ की, मैं उसमें छल नहीं देखता अपितु अज्ञान का पुट देखता हूँ। इस शिक्षा पद्धति से आमूल-चूल रिक्तता है। अतः उसे प्राप्त करके जो स्नातक तैयार होता है वह भी अपने आपको रिक्त अनुभव करता है। उसके व्यक्तित्व में जो कुच ठोस या रचनात्मक होता है वह घरेलू संस्कारी या भारत के समष्टि जीवन का प्रभाव होता है। हमारे शिक्षा क्रम में व्यक्तित्व निर्माण के गुणों का नितान्त अभाव है। जिन तत्वों से व्यक्तित्व की नींव मजबूत होती है, उनकी शिक्षा पद्धति में समावेश नहीं है।

भाषा का सवाल

शिक्षा पद्धति का एक पक्ष भाषा है, इस देश में संस्कृत जैसी देववाणी और देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि होते हुए भी हम उनका समुचित ज्ञान अपने बालक को नहीं कराते। हम भाषा पढ़ाते हैं, परन्तु यह नहीं बताते कि वर्ण क्या है, कैसे उत्पन्न होते हैं, शब्द क्या है, उनकी शक्ति क्या है और उसकी रचना कैसे होती है, उसका अर्थ किस प्रकार किया जाता है। देवनागरी लिपि पढ़ने-लिखने में सरलतम है और संस्कृत (भाषा) अभिव्यक्ति के लिए सरलतम माध्यम है। इस भाषा में नये नये शब्दों की रचना का भी अजस्र स्रोत है और वह ज्ञान-कोष भी विद्यमान है, जो मानव सृष्टि का आदि-ज्ञान है। हम बार-बार विज्ञान मूलक दृष्टिकोण की बात करते हैं, परन्तु सिक्षा पद्धति में उन सब वैज्ञानिक तत्वों को बहिष्कृत कर रखा है, जिनकी सहायता से हमारे शिक्षा ही वैज्ञानिक बन सकती है।

भाषा के अतिरिक्त शिक्षा का दूसरा पक्ष है, आचार एक विषय वस्तु। इस माने में हमारी शिक्षा पद्धति पूर्णतः निस्सार है। बालक को हम आचार शास्त्र या नीतिशास्त्र से सर्वथा विलग रखते हैं। विषय-वस्तु के नाम पर हम आरम्भ से ही बालक को पुस्तकों के भार से लाद देते हैं, जिसमें कोमल अन्तरंग वाला बालक कुण्ठितप्राय हो जाता है। हम यह भूल जाते हैं कि बालक को शिक्षा देने की श्रेष्ठतम विधि लालित्यपूर्ण होती है। ललित-भाव ने शिक्षा का श्रेष्ठतम माध्यम हमारे देश में पुराण, पंचतंत्र, हितोपदेशादि हो सकती है और इसकी भी पालना श्रुति के माध्यम से हो। मानव का आदि ज्ञान ही श्रुति के रूप में प्रकट हुआ है और व्यक्ति का आदि ज्ञान श्रुति से क्या नहीं उपार्जित हो। जिसे प्राप्त करके बालक उत्फुल्ल हो, वही श्रेष्ठतम शिक्षा है। क्या कहानी से बढ़कर कोई चीज नहीं है जो बालक को उत्फुल्ल कर सके। यह कार्य उतना ही रूचिकर है जितना कि खेलकूद।

श्रुति के माध्यम से दस वर्ष तक की आयु के बालक को सम्पूर्ण मौलिक बातों का ज्ञान हो सकता है और तीन या चार भाषाएं सिखाई जा सकती हैं। मौलिकता के सहारे इतिहास, भूगोल, साहित्य, नीति आदि विषयों को समझने की क्षमता भी बालक में उत्पन्न हो जायेगी। आज तो हमारे पाठ्यक्रम का हाल यह है कि शहरी स्कूलों के बच्चे ट्विंक्ल ट्विंक्ल लिटिल स्टार जैसी दर्जनों अंग्रेजी कविताएं रटे हुए होते हैं, परन्तु किसी बालक या शिक्षक को देवनागरी के आठ अक्षरों वाला गायत्री मंत्र नहीं आता जिसके उच्चारण से एक सास में विश्व ब्रह्माण्ड के सातों भुवनों के नाम याद हो जाते हैं। इसी दौरान उसे तीन या चार भाषायें भी पढ़ाई जा सकती है और साधारण गणित भी। भाषा-शिक्षा को हम तीन भागों में बांट सकते हैं। *शेष अगले अंक में*

वेद विज्ञान से साभार

www.thearyasamaj.org

प्रासंगिक

५ सितंबर शिक्षक दिवस

- आचार्य प्रेम प्रकाश शास्त्री

गुरु शिष्य की परंपरा आदिकाल से चली आ रही है महर्षि याज्ञवल्क्य ने शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया-मातृमान्-पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद बालक का प्रथम गुरु माता, द्वितीय गुरु पिता और तृतीय गुरु सत्यज्ञान का उपदेश करने वाले शिक्षक जो उसे पुस्तकीय ज्ञान के अलावा लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान को आत्मसात् कराता है। वैदिक काल में गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का प्रचलन था। जिसके तहत शिष्यों को अपने गुरुओं की छत्रछाया में रहकर ही वेदादिसत्यशास्त्रों का अध्ययन - अध्यापन कार्य करना होता था। राम, कृष्ण, अभिमन्यु ,आरुणि एवं आधुनिक युग में वैदिक ऋषि दयानन्द ने उसी का अवलम्बन कर शिक्षा प्राप्त की। यह शिक्षण का आदर्श रूप था।

५ सितम्बर को प्रतिवर्ष भारतवर्ष में **"गुरु दिवस या शिक्षक दिवस"** के रुप में मानया जाता है वस्तुतः वैदिक वाङ्मय में या भारतीय वैदिक चिन्तन में समस्त मनुष्यों का गुरु परमपिता परमेश्वर को ही माना गया है। वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् एवं सर्वज्ञ होने तथा कालातीत होने से आदि गुरु है। योग दर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन के समाधिपाद के २६वें सूत्र में आदिगुरु (परमेश्वर) के लक्षण इस प्रकार से निरुपित किया है।

"स एष पूर्वेषामापि गुरु : कालेनानवच्छेदात्"

अर्थात्- वह ईश्वर भूत भविष्यत् वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सब गुरुओं का गुरुः विद्या देने वाला है। काल के द्वारा मृत्यु को प्राप्त नहीं होने से। लौकिक दृष्टिकोण से भी यदि हम गुरु शब्द पर विचार करें तो हमें यही विदित होता है कि

"गृह्णाति उपदिशति विद्यामाचारं यः सः गुरु :"

अर्थात्- जो विद्या का अपने शिष्यों को उपदेश करे उसे गुरु कहते हैं। ५ सितम्बर को हम उस महान् व्यक्ति का जन्म दिन मनाते हैं जो हमारे देश के द्वितीय राष्ट्रपति थे। उस महान् व्यक्ति के व्यक्तित्व के लोहा अंग्रेज शासक भी मानते थे। ऐसी विभूति का नाम था, स्वनामधन्य डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्। डॉ राधाकृष्णन विश्व के महान् चिन्तकों में से एक थे। वे अंग्रेजी साहित्य के ऐसे उद्‌भट्ट विद्वान थे कि उनके द्वारा व्यक्त किये गये शब्दों के अर्थ जानने के लिए स्वयं अंग्रेजों को जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी है, शब्दकोष (डिक्शनरी) देखना पड़ता था। यही कारण है कि उनके प्रति मस्तक सादर नतमस्तक हो जाता है। यही कारण है कि ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी स्वतंत्र भारत के उच्च पदों पर आसीन होने से पहले एक "शिक्षक" थे। वे शिक्षक की गरिमा को जानते थे, व पहचानते थे। समाज के लिए , राष्ट्र के लिये शिक्षक की भूमिका को भलीभाँति समझते थे। वे इस बात से अच्छी तरह विज्ञ थे कि शिक्षक तो समाज और राष्ट्र के लिए समर्पित रहता है। परंतु **"समाज और राष्ट्र का शिक्षक के प्रति क्या उत्तरदायित्व होना चाहिए ?"** इसके लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहे वे मानते थे कि शिक्षक को समाज से तिरस्कार ही मिलता है। इन्ही कारणों से द्रवीभूत होकर उन्होने अपने जन्म दिवस को शिक्षकों के नाम पर समर्पित कर शिक्षक का सम्मान समाज में यथावत् बनाए रखने के लिए योगदान दिया। उनकी इस महान् उदारता के लिए शिक्षक समाज आज ऋणी है,और भविष्य में रहेगा।

शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता व समाज की रीढ़ की संज्ञा से विभूषित किया गया है। शिक्षक समुदाय इस प्रकार की संज्ञा से सुशोभित होकर फूला नहीं समाता, किन्तु यह क्षणिक ही होता है क्योंकि जब वह पाता है कि यह सब कुछ ढकोसला है, मात्र कोरी सहानुभूति है, तो उसका साफ सुथरा दिल शीसे की तरह चकनाचूर हो जाता है। जिस प्रकार समाज व राष्ट्र शिक्षक से पूर्ण अपेक्षाएं रखता है उसी तरह शिक्षक जिसको पूर्ण तो नहीं अल्प ही समझें अपेक्षाएं रखता है लेकिन वे अपेक्षाएं धराशायी ही रह जाती है। वर्तमान शिक्षक जिसको गुरु कहते हैं शासन की नीतिओ एवं व्यवहारों

www.thearyasamaj.org

से व्यथित है। जिसकी व्यथा-कथा सुनने वाला न शासन है न अधिकारी और न ही समाज। इतना होने पर भी शिक्षक से अपेक्षाएं बरकरार रहती हैं। ५ सितम्बर को शिक्षक दिवस मनाकर किसी न किसी प्रकार किसी न किसी प्रमुख व्यक्ति के द्वारा शिक्षक का सम्मान किया जाता है। और साल भर असम्मान किया जाता है। यह कहाँ की दोहरी नीति है ? शिक्षकों का सम्मान तो ठीक वैसे ही प्रतीत होता हैं जिस प्रकार भारत में मनाया जाने वाला पोला का पर्व, पर्व वाले दिन बैलों को खूब सम्मान होता है और सालभर दुर्दशा ।

वैसे तो गुरु शिष्य की परंपरा आदिकाल से चली आ रही है महर्षि याज्ञवल्क्य ने शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रुप से उल्लेख किया - **मातृमान्- पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद** बालक का प्रथम गुरु माता, द्वितीय गुरु पिता और तृतीय गुरु सत्यज्ञान का उपदेश करने वाले शिक्षक जो उसे पुस्तकीय ज्ञान के अलावा लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान को आत्मसात् कराता है। वैदिक काल में गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का प्रचलन था। जिसके तहत शिष्यों को अपने गुरुओं की छत्रछाया में रहकर ही वेदादिसत्यशास्त्रों का अध्ययन - अध्यापन कार्य करना होता था। राम, कृष्ण, अभिमन्यु, आरुणि एवं आधुनिक युग में वैदिक ऋषि दयानन्द ने उसी का अवलम्बन कर शिक्षा प्राप्त की। यह शिक्षण का आदर्शरुप था। कालान्तर में शिक्षा में परिवर्तन हुआ है। राजघरानों में गुरु स्वयं राजकुमारों को विद्यादान हेतु उपस्थित होते थे। आचार्य द्रोण इस परंपरा के उदाहरण हैं। गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा और लगन से शिक्षा ग्रहण करने वालों में "एकलव्य" का नाम अमर है। और रहेगा भी । कुछ लोग अज्ञान वश ही **"एकलव्य और द्रोण "**को कलंकित करते हैं।

प्राचीन काल में गुरु तथा शिष्य दोनों एक दुसरे के प्रति पूर्ण -रुपेण समर्पित थे, किन्तु आज शासन एवं समाज की व्यवस्था के कारण गुरु शिष्य में समर्पण की भावना समाप्त प्रायः है। शिक्षक समर्पण की भावना रखता है और उसी भावना से अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने के प्रयास भा करता है। परन्तु शासन समाज अपनी दोहरी नीति के कारण शिक्षक के इस समर्पण में बाधक होते हैं। शिक्षक का जो मूलकार्य है। उससे उसे वंचित रखा जाता है। शिक्षक से ऐसे अनेक अशिक्षकीय कार्य कराए जाते हैं जिससे शिक्षक अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता है। फिर भी शासन समाज एवं पालक शिक्षक से सकारात्मक आशा रखते हैं। यह कहाँ तक तर्क संगत है ? **डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन** ने अपना जन्म दिन **"शिक्षक दिवस"** के रुप में शिक्षक के समाज को सौंपकर सम्मान दिलाए जाने का जो अभूतपूर्व कदम उठाया है, उनके इस गौरवपूर्ण कार्य के लिए शिक्षक समुदाय उन्हें कोटिशः नमन करता है। साथ ही उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

"विद्ययामृतमश्नुते"

पता : क्वा. नं. टाईप ३/३, स्टाफ क्वाटर, केन्द्रीय विद्यालय नं. २, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर (छ.ग.)

★ कविता ★

सामाजिक-व्यथा

क्यूँ री माँ,
वह क्रूर-निर्दयी-राक्षस
व्यक्ति मेरा बाप है।
या मेरा जन्म होना स्वयं अभिशाप है॥
ममता की मूर्ख की आंखों में
किस निर्लज समन्दर का पानी है
मेरी कुर्बानी, तेरी जुबानी
आंसुओं में डूबी, तेरी मेरी कहानी है॥
संगदिल क्यूँ हो रही नारी
दो कुल की सूत्रधार
क्यूं ... कहलाती बेचारी॥
माँ-पुत्र मोह का मत कर अभिमान।
बिन बेटी के, किस कुल का चढ़ा परवान॥
कन्या भ्रूण के हत्यारों
मां कातिल है या बाप खूनी है।
राखी के दिन पूछ जाकर उससे
आज किस भाई की कलाई सूनी है।

रचयिता - विजयलता सिन्हा, केलाबाड़ी, दुर्ग (छ.ग.)

www.thearyasamaj.org

गवेषणात्मक

यज्ञ और पर्यावरण

- डॉ. सुदर्शनदेवार्य, आचार्य गुरुकुल हरिपुर, नवापारा, उड़ीसा

समस्त विश्व के समस्त मनुष्यों की समस्त समस्याओं का एक मूल कारण है - पर्यावरण प्रदूषण। अब तक पर्यावरण प्रदूषण रूपी महाभंयकर भस्मासुर ने मात्र हवा की नहीं किन्तु पानी, पृथ्वी, ध्वनि, प्रकाश, आकाश आदि सबको अपनी चंजुक में फंसा लिया है। दूषित पदार्थों से उत्पन्न सभी अन्नादि पदार्थ भी दूषित हो गए हैं। इन पदार्थों का सेवनकारी मनुष्य भी आज प्रदूषित है तथा तामसिक स्वभाव से परिपूर्ण हो, राष्ट्र को रसातल की ओर लिये जा रहा है। आइये, सब मिलकर समस्त बुराईयों के मूलकारण पर्यावरण प्रदूषण रूपी महाराक्षस को नष्ट करने वाले अमोघशस्त्र (यज्ञ) का प्रयोग करें।

पर्यावरण का तात्पर्य :- हमारे चारों ओर विद्यमान वायु, जल और भूमि आदि का आवरण। जिसकी शुद्धि यज्ञ से अवश्यम्भावी है। पर्यावरण हमारा भगवान है क्योंकि भ-भूमि, ग-गगन, व-वायु, अ-अग्नि, न नीर ये पांच भूतों से निर्मित हुआ है। (अतः पर्यावरण को सुरक्षिक रखके भवान की भक्ति करें) पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के कारणों के विषय में हमें ज्ञात होना चाहिए -

१. सामान्य रुप से हवा में २१ प्रतिशत आक्सीजन, ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन, ०.०३ प्रतिशत कार्बनडाई आक्साईड तथा लगभग १ प्रतिशत अन्य गैंसे होती है। हवा में अन्य जहरीली गैसों के मिलने के कारण इसकी संरचना में परिवर्त्तन होने से वायु प्रदूषण होता है।

२. ६० प्रतिशत वायु प्रदूषण मोटर वाहनों से और ३५ प्रतिशत बड़े तथा मध्यम उद्योगों से फैलता है।

३. एक मोटर वाहन ९७० कि.मी. की यात्रा में उतना आक्सीजन फूंक डालता है जितना कि एक व्यक्ति को एक वर्ष के लिये आवश्यक होता है।

४. किसी भी स्वचालित वाहन में एक गैलन पेट्रोल/डीजल के दहन से तीन पाऊंड नाइट्रोजन आक्साइड निकलती है, जो कि ५से ३० लाख घनफीट हवा को प्रदूषित करती है।

५. प्राकृतिक संतुलन के लिये पृथ्वी पर भूमि के ३३ प्रतिशत भाग पर वन होना अति आवश्यक है। हमारे देश में वर्तमान में मात्र १९ प्रतिशत भूमि पर वन है।

६. दिल्ली जैसे महानगरों में लोग जाने-अनजाने प्रतिदिन २० सिगरेट के धुएँ में जितना विष होता है। उतना विष प्रदूषित वायु के कारण अपने फेफड़ें में खींच लेते हैं। न्यूयार्क की सड़कों पर काम करने वाला यात्रा नियामक (ट्रेफिकपुलिस) ४ घण्टों में १०५ सिगरेट का धुआँ रुपी विष को अपने हृदय में खींच लेता है। अतः वहां साइकिल चलाने का फैशन शुरु हो गया है।

७. मनुष्य एक दिन में औसतम २१६०० बार श्वसन क्रिया करता है और इस क्रिया में १६ कि.ग्रा. आक्सीजन आवश्यक है।

८. एक व्यक्ति एक वर्ष में १२ टन कार्बनडाई आक्साइड उच्छ्वास से वातावरण में बाहर फेंकता है।

९. एक बड़ा पूर्ण विकसित वृक्ष एक मनुष्य के सम्पूर्ण आयुष्य के लिये आवश्यक होता है। उतनी मात्रा में आक्सीजन प्रदान करता है, और वह हवा, पानी, ध्वनि के प्रदूषण तथा धूल को रोकता है।

१०. वायु प्रदूषित होने के कारण खाद्य पदार्थ, पोषक तत्वों से रहित, अशुद्ध और शक्तिहीन बन गए हैं।

११. प्रदूषण के कारण पौधों की कार्बनडाई आक्साइड शोषण करने की तथा पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन छोड़ने की प्राकृतिक प्रक्रिया मन्द हो रही है।

१२. बढ़ते जा रहे वायु प्रदूषण पर यदि नियन्त्रण नहीं किया गया तो कुछ वर्षों के बाद ऐसी स्थिति बन जायेगी

www.thearyasamaj.org

कि मनुष्य को अपने साथ प्राणवायु का सिलेण्डर बांधकर रखना होगा, जिससे शुद्ध वायु ली जा सके। जैसे आज अशुद्ध जल के कारण खनिज जल (मिनरल वॉटर) की बोतल का तथा नाक को ढकने के लिये कपड़े की पट्टी (मास्क) का प्रचलन हो गया है।

इस वायु प्रदूषण को और विभिन्न रोगों के निवारण के लिये गोपथ ब्राह्मण और कौषतकि ब्राह्मण में भैषज्य यज्ञों का विधान किया गया है। (गो.ब्र.१.१९/कौषी.५.१) पाश्चात्य विद्वान् वैज्ञानिक हाले, पामर और बुगे ने शोध निष्कर्ष दिया है कि यज्ञीय अग्नि से गैस के रूप में अनेक पदार्थ निकलते हैं। ये वायु में मिलकर सुगन्ध पैदा करते हैं, जिससे वायु प्रदूषण दूर होता है और रोग का निवारण होता है। (हवन यज्ञ और विज्ञान डॉ. रामप्रखाश पृ. ५२)

यहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती की यह उक्त स्मरणीय है। इसलिये आर्यवीर शिरोमणि महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे-महाराजे, लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो, तो वैसा ही हो जाये। (स.प्र.तृ.स.) जीवन जीने के लिये तीन चीजें अत्यन्त आवश्यक है - अन्न, जल और वायु। यज्ञ केवल वायु शुद्ध रखता है, ऐसी बात नहीं यह वर्षा में भी सहयोगी है। वेद में कहा - **निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।** (यजु. २२/२२) जब जब हम इच्छा करें, तब तब वर्षा हो। यजुर्वेद में यज्ञ को **वर्षवृद्धम्** (१/१६) अर्थात् वर्षा का बढ़ाने वाला कहा है। ऋग्वेद १० मण्डल के ९८वें सूक्त को निरुक्तकार यास्क ने वर्षकामेष्टि सूक्त कहा है। आर्य विद्वानों के द्वारा अनेकबार करीट की लकड़ी, पीले तिले और गुगुल आदि को गोघृत युक्त सामग्री से लगातार हवन करने पर वर्षा करवायी जा चुकी है। वेद विज्ञानाचार्य श्री वीरसेन जी वेदश्रमी ने वर्षा कराने के लिये २५ के लगभग वृष्टि यज्ञ सम्पन्न करायें जिनमें से अनेक स्थानों पर पूर्ण अथवा आंशिक वर्षा हुई, ऐसे ही प्रयोग पं. हरप्रसाद जी शर्मा आदि महानुभावों ने भी किये। महर्षि मनु महाराज कहते हैं -

अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥ (३/४८)

अग्नि में दी गई आहुति सूर्यमण्डल में पहुंचती है, उससे बादल बनते हैं, वर्षा होती है, उससे अनल की उत्पत्ति होती है, जिससे प्रजाओं की उत्पत्ति और जीवन चलता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण का यह सन्देश प्रसिद्ध है -

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥ गीता ३/१४

अर्थात् यज्ञ से मेघ, मेघ से वर्षा, वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार हम देखते हैं, यज्ञ एक सम्पूर्ण विज्ञान है। मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है। सुख का हेतु है। स्वास्थ्य का आधार है। पवित्रता की पहचान है। वेद के अनुसार - **"आयुर्दा असि आयुर्मेदेहि"** आयु प्रदाता है। विश्वभिषक् - विश्व भर का वैद्य है।

अतः इसका सत्कार, सेवन कर धर्म-मत, पन्थ सबके लिये अनिवार्य है। क्योंकि सबको स्वास्थ्य, वर्षा, शुद्ध पर्यावरण चाहिये। यज्ञ के द्वेषी, यज्ञ के लिये समय न निकालने वाले श्रीकृष्ण जी की बात को याद रखें। नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः। गीता. ४/३१। अर्थात् यज्ञ नहीं करने वालों का यही लोक सुखकारक नहीं होता तो परलोक कैसे होगा ? विश्वशान्ति के लिये उपर्युक्त याज्ञिक लाभ निर्देशन मात्र हैं। यज्ञ के समग्र विश्व शान्तिप्रद लाभों का प्रयोग परीक्षण तो यांत्रिक अनुसन्धान शाला में संभव है।

इत्योम्।

विचार-गङ्गा

- अपने कार्यों को चाँद सितारों और सूरज के कार्यों की तरह निःस्वार्थ बना दो, तभी सफलता मिलेगी।
- अतिथि सत्कार से मना करना सबसे बड़ी गरीबी है।
- अगर जिन्दा रहना है तो साहस के साथ जियो, खतरों से दूर भागने की बजाए डटकर उनका मुकाबला करो, जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है।
- अपने अभावों के साथ संघर्ष करने का नाम ही जीवन है।
- अगर आपके पास सच्ची लगन है तो सफलता स्वयं आपके पांव चूमेगी।

www.thearyasamaj.org

समीक्षात्मक

आत्मा-कैसी, कहां, कितनी

डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार, पूर्व प्रोफेसर
रामजस कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

जून २०१३ के अग्निदूत में श्री अजय शर्मा का लेख उक्त शीर्षक से ही प्रकाशित हुआ है। गत मई के अंक में भी यह लेख रहा है किन्तु यत्न करने पर भी मई का अंक मुझे नहीं मिल सका, अतः जून के अंक के आधार पर ही कुछ निवेदन इस प्रकार है :-

श्री अजय शर्मा ने उपयोगी प्रश्न उठाये हैं। इस प्रकार के सैद्धान्तिक विषयों पर चर्चा होनी ही चाहिए। कारखानों में तो यह परम्परा शिथिल या समाप्तप्राय है। लेख के माध्यम से तो जीवित रहनी चाहिए। शर्मा जी के समान हमारी भी मान्यता है कि प्रत्येक सजीव में एकल प्राणिभाज्य, एकदेशीय, अतिसूक्ष्म आत्मा का निवास होता है। इस पर शर्मा जी ने प्रश्न किया है कि गुलाब तथा जलीय पौधे हाइड्रा को काट कई भाग करके रोपने से सभी पौधे पृथक्-पृथक् बन जाते हैं तो उस अविभाज्य एकल आत्मा का क्या हुआ।

शर्मा जी ने यह प्रश्न वृक्षों तथा वनस्पतियों में भी जीव की सत्ता मानकर किया है। इस प्रकार के तो अन्य वृक्ष तथा लताएं आदि है जिन्हें काटकर अन्यत्र लगाने से वे सम्पूर्ण वृक्ष या लता के रुप में भी विकसित हो जाते हैं। यथा गन्ना, बरगद तथा पोपुलर नामक वृक्ष तथा लताएं हैं, जिन्हें काट-काट कहीं भी उगाया जा सकता है। यह गुण सभी वृक्षों तथा लताओं आदि में नहीं पाया जाता। यथा शीशम, नीम, सागवान आदि अनेक वृक्षों में उक्त गुण नहीं हैं। यदि वृक्षों में आत्मा होती तो काटकर लगाने से जीवित होने की प्रक्रिया सभी वृक्षों तथा लताओं में समान ही होनी चाहिए थी। अतः हमारी मान्यता है कि वृक्षों तथा लताओं आदि में आत्मा नहीं है। यह उनका शारीरिक गुण हैं कि कुछ वृक्ष तथा लताएं काटकर दूसरी जगह लगाने से भी हरे हो जाते हैं, कुछ नहीं, वृक्षों में जीव है या नहीं, इस विषय पर स्वामी दर्शनानन्द जी तथा पं. गजपति शर्मा आदि के शास्त्रार्थ सुप्रसिद्ध हैं। लेखक की मान्यता है कि वृक्षों तथा वनस्पतियों में जीव या आत्मा नहीं होता। इस विषय को यही छोड़ा जाता क्योंकि यह अलग विषय है।

शर्मा जी ने कुछ ऐसे जीवों के उदाहरण भी दिये हैं कि जिन्हें काट देने से कटे हुए सभी अंग पूर्ण शरीर के रुप में विकसित हो जाते हैं। यथा - केचुआ तथा फीताकृमि। इसी प्रकार के माता के गर्भ में अण्डाणु को निकालकर उसके कई टुकड़े करके सभी टुकड़ों से समान मानवों की उत्पत्ति का प्रश्न है कि इन सभी भागों में आत्मा का निवास किस प्रकार से है। क्या आत्मा भी अविभाजित हो गया या कटे अंगों में नयी आत्माएं आ गयी ? प्रश्न विचारणीय है किन्तु एकदम सप्रमाण तथा स्पष्ट सा उत्तर तो यही है कि आत्मा अविभाज्य है। उसे न तो चिकित्सक के शस्त्र से काटा जा सकता है तथा न ही स्वेच्छा से किसी भी शरीर से निकालकर दूसरे शरीर में प्रविष्ट किया जा सकता। वैज्ञानिकों के लाख प्रयत्न करने पर भी ऐसा सम्भव नहीं होगा क्योंकि आत्मा निराकार है। भगवान श्री कृष्ण गीता में कह रहे हैं - **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि।** इसलिए वैज्ञानिक उस आत्मा के निवास या घर रूपी शरीर को ही विभाजित कर सकता है, आत्मा को नहीं। अब प्रश्न है कि केचुए तथा अण्डाणु विभाजित होने पर पृथक चेतन जीव के रूप में किस प्रकार विकसित हो जाते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जीव शरीर में तभी प्रविष्ट होगा जब वह शरीर जीव को जन्म देने की क्षमता रखता हो। यह क्षमता आरम्भिक सृष्टि में स्वयं पृथिवी के गर्भ में थी, क्योंकि उस समय माता-पिता तो थे ही नहीं। इसलिए दयानन्द ने जो विचार उपस्थित किया है आदि सृष्टि में पृथिवी को फोड़कर युवा मानव उत्पन्न हुए, यह विचार पूर्ण वैज्ञानिक प्रतीत होता है क्योंकि माता के गर्भ में जिस प्रकार शुक्र तथा रज का सम्मित ओत ठोस होते-होते कालान्तर में एक पूर्ण विकसित शरीर का स्वरुप धारण कर लेता है। गर्भ में वह जरायू (जेह) से संबंधित रहता है। उसका खान-पान बुद्धि सब कुछ माता के शरीर पर ही निर्भर रहती है। यह क्रम मानव तथा पशु शिशुओं में समान ही है। ठीक इसी प्रकार आदि सृष्टि में पृथिवी रुपी माता के गर्भ में ये शरीर एक खोल से ढके रहकर विकसित होकर पृथिवी से बाहर आते हैं। यही

www.thearyasamaj.org

प्रक्रिया माता के गर्भ से भ्रूण को निकालकर टुकड़े कर देने पर भी पृथक-पृथक् मानव के रूप में विकसित होने में है। भ्रूण एक शरीर है। वह जीवन के आते तक विकसित होने का स्थान या पदार्थ है। एक मान्यता के अनुसार गर्भ के दूसरे महीने में जीव भ्रूण में प्रवेश करता है। यदि प्रवेश न करे तो वह भ्रूण विकसित ही नहीं होगा। यदि जीव के प्रवेश से पूर्व ही भ्रूण को निकाल कर उसके टुकड़े करके एक टुकड़े को माता के गर्भ में तथा अन्यों को फ्रीजर में रख दिया जाता है तो उन सभी टुकड़ों में जीव को धारम करने तथा विकसित होने की क्षमता रहेगी तथा उन सभी टुकड़ों से उत्पन्न शरीर भी एक जैसे ही होंगे क्योंकि ये टुकड़े तो एक ही भ्रूण के किये गये हैं। एक ही माता-पिता से उत्पन्न भाईयों तथा बहनों की प्रकृतियों में भी पर्याप्त समानता होती है। यही नहीं, अपितु ये बच्चे अपने माता-पिता की आकृति पर भी होते हैं। इसलिए यह सहज ही है कि भ्रूण के सभी टुकड़ों से समान आकृति वाले शरीर ही विकसित हों।

अब प्रश्न है कि जिस टुकड़े को काटकर माता के गर्भ में पुनः प्रत्यारोपित कर दिया गया था, वह तो सामान्य प्रक्रियानुसार नौ मास में ही शिशु के रूप में उत्पन्न हो जायेगा, किन्तु जिन भागों को फ्रीजर में रख दिया गया है वे कालान्तर में कैसे विकसित हो जाते हैं ? यहां पर भी उत्तर स्पष्ट है कि जब तक फ्रिजर में रखे हुए टुकड़ों को विकसित होने के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिलेगा, तब तक वे विकसित नहीं होंगे। यदि फ्रीजर में भी अनुकूल तापमान नहीं है तोवे वहां सड़ भी सकते हैं। उचित तापमान में पर्याप्त समय तक सुरक्षित रह सकते हैं। उनमें विकसित होने की क्षमता है, किन्तु वह क्षमता तभी सार्थक होगी, जबकि उसे विकास के अनुकूल भूमि-गर्भ मिलेगा। इसे ऐसे समझें कि गेहूँ के दाने में अंकुरित होने की क्षमता है। अनुकूल भूमि तथा जलवायु पाकर वह तुरन्त ही अंकुरित हो जाता है, अन्यथा महीनों तक भी मिट्टी में दबा पड़ा रहता है। पानी आदि का संवर्ग होने पर ही वह अंकुरित होता है। इसलिए शरीर चाहे जड़ का हो या चेतन प्राणी का, वह तभी विकसित होगा, जब उसे अनुकूल भूमि प्राप्त होगी। आदि सृष्टि में आवश्यक नहीं कि ९ मास पश्चात ही मानव उत्पन्न हो गया हो। ऐसा होने में लम्बे अन्तराल की भी सम्भावना है।

एक अन्य उदाहरण लें- स्त्री के रजास्वता होने के उपरान्त ही स्त्री-पुरुष के संयोग से सन्तानोत्पत्ति होती है, किन्तु यदि रोजदर्शन के उपरान्त भी स्त्री का संसर्ग पुरुष से न हो तो सन्तान जन्म नहीं लेगी। इसका अर्थ है कि स्त्री में तो तब भी सन्तानोत्पत्ति की क्षमता थी, किन्तु पुरुष का संसर्ग न होने से वह सामग्री जीवन के जन्म की दृष्टि से उपयुक्त न थी। पुरुष का संसर्ग होते ही भ्रूण नामक ऐसा पदार्थ बन गया, जिसमें जीव को जन्म देने की क्षमता था। ठीक इसी प्रकार भ्रूण को काटकर किये गये टुकड़ों में भी ऐसी क्रमता रहती है कि वे पृथक् पृथक् रूप में जीवों को जन्म दे सके। केचुए तथा फीता कृमि के विषय में भी यही समाधान जानना चाहिए कि उनके विभाजित अंगों में भी जीवोत्पत्ति की क्षमता है।

शर्मा जी ने अन्त में एक बात विचारणीय लिखी है कि जब तक हमारे शरीर के सारे अंग एक साथ सक्रिय रहते हैं, तब तक ही हम जीवित रहते हैं। जब कोई एक या अधिक अंग कार्य करना बन्द कर देता है तो हमारी मृत्यु हो जाती है। लेखक उक्त विचार से सहमत नहीं है तथा प्रमाण भी उसके विरुद्ध है। देखा जाता है कि हाथ-पैर कट जाने या आचरण आदि से मर जाने पर भी व्यक्ति जीवित रहता है। इसी प्रकार आंख, कान आदि की शक्ति समाप्त हो जाने पर भी जीवन चलता है। हाँ, शरीर के आन्तरिक कुछ अंग अवश्य ही ऐसे हैं कि जिनके कार्य न करने पर व्यक्ति जीवित नहीं रहेगा। मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, गुर्दे आदि इसी प्रकार के अंग हैं, जिनके निष्क्रिय होने पर मृत्यु हो जाती है। सभी अंगों के विषय में ऐसा नहीं है।

एक अन्य प्रश्न शर्मा जी ने उठाया है कि मृत शरीर में अंगों की पुनः कार्य करने की क्षमता बेमानी है। यहां भी उपर्युक्त उत्तर ही है। शरीर, इसके अंग तथा अलग वस्तु हैं तथा आत्मा अलग, शरीर किसी आत्मा का निवास स्थान मात्र था। आत्मा, मन तथा शरीर की शक्तियाँ पृथक् पृथक् हैं। आत्मा के वियुक्त हो जाने पर भी शरीर के कुछ अंग समर्थ रह सकते हैं तथा अन्य शरीरों में कार्य कर सकते हैं, किन्तु इनकी यह क्षमता समय सापेक्ष है। जून के अंक के सम्बन्ध में यथाशक्ति कुछ लिखा है यदि मई का अंक मिल जाए तो उस पर भी विचार किया जाता है।

पता : बी. २६६, सरस्वती विहार, दिल्ली-३४.

www.thearyasamaj.org

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

व्याख्यानात्मक

– **स्वामी ध्रुवदेव जी** परिव्राजक (उपाध्याय)

व्याख्यान :- (ओ३म्) यह परमेश्वर का मुख्य या सब नामों में उत्तम नाम है। जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है, वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है या इस एक नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं। जैसे आकार से विराट्, अग्नि आदि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु आदि, मकर से ईश्वर, आदित्यादि। **(भूः)** जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयंभू है **(भुवः)** जो सब दुःखों से रहित तथा मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है **(स्वः)** जो स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करने वाला है, जो नानाविद् जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है, नियम में रखता है और सबके ठहरने का स्थान है।

उस **(सवितुः)** सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी व समग्र ऐश्वर्य के दाता **(देवस्य)** सबके चाहने योग्य, शुद्ध स्वरुप, सर्वत्र विजय कराने वाले परमात्मा का जो **(वरेण्यम्)** अतिश्रेष्ठ या अत्युत्तम ग्रहण या स्वीकार करने योग्य प्राप्त होने योग्य, और ध्यान करने योग्य **(भर्गः)** सब क्लेशों, दुःखों, दोषों या दुःखमूलक पापों को भस्म करने वाला व पवित्र करने वाला शुद्ध विज्ञान स्वरुप या चेतन ब्रह्मस्वरुप है **(तत्)** उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष को हम लोग **(धीमहि)** धारण करें व उसका ध्यान करें, किस प्रयोजन के लिए कि **(यः)** जो सविता देव परमात्मा हमारी **(धियः)** बुद्धियों को **(प्रचोदयात्)** उत्तम, गुण, कर्म, स्वभावों में प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे-अच्छे कामों में सदा प्रवृत्त करें। *(संस्कार विधि + वेदभाष्य + पंचमहाय%विधि + सत्यार्थ प्रकाश)।*

इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना और इससे भिन्न किसी को उपास्य इष्टेदव उसके तुल्य वा उससे नहीं मानना चाहिए। *(संस्कार विधि वेदारम्भ)*

इसलिए सब लोगों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरुप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करने हारे परमेश्वरी ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देहरूप वृक्ष के चार फल है, वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा मनुष्यों को प्राप्त हों। *(पंचमहाय%विधि)*

हे मनुष्यों ! जो सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्दस्वरुप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय करने हारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकाररहित, सबके घट-घट का जानने वाला, सब का धर्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करने हारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरुप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरुप है, उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिये कि वह हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरुप हमको दुष्टाचार अधर्मयुक्त मार्गसे हटाके श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावे,

www.thearyasamaj.org

उसको छोड़ कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है, वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है। *(सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास)।*

भावार्थ-१ :- जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म, अनैश्वर्य व दुःखरूप मलों को छुड़ा के धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उनको अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है। *(ऋ.दया. कृत. यजुर्वेद भाष्य अ.३६/मं.३)*

भावार्थ-२ :- सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरुप नित्य शुद्ध बुद्ध मक्तस्वभाव सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़ के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापना कभी न करें, किस प्रयोजन के लिए कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ा के धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें। जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये।
(ऋ.दया. कृत. यजुर्वेद भाष्य अ.२२/मं.९)

भावार्थ-३ :- इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालंकार है। जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभावचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी करे। जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उसको पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्र का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्ते। जैसे परमेश्वर सब दोष, क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे। *(ऋ.दया. कृत. यजुर्वेद भाष्य अ.३०/मं.२)*

भावार्थ -४ :- मनुष्य सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, सबसे उत्तम, सब दोषों को नष्ट करने वाले, शुद्ध स्वरुप परमेश्वर की उपासना नित्य करें। किस प्रयोजन के लिये ? इसके उत्तर में वेद कहता है - स्तुति, धारणा, प्रार्थना और उपासना किया हुआ वह परमेश्वर हमें सब दुष्ट गुण, कर्म, स्वभावों से पृथक् करके सब श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभावों में सदा प्रवृत्त रखे, इसलिये परमेश्वर की स्तुति आदि करना योग्य है। प्रार्थना का यही मुख्य सिद्धान्त है कि जैसी प्रार्थना करें वैसा ही कर्म (आचरण) भी करें। *(ऋ.दया. कृत. यजुर्वेद भाष्य अ.३/मं.३५)*

पता : दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, पन्ना-सागपुर, जि.साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७

अभिनन्दन एवं छात्रवृत्ति एवं प्रतिभा पुरस्कार प्रदान समारोह

मान्य महोदय, मानव सेवा प्रतिष्ठान (दिल्ली) प्रतिवर्ष मेधावी छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्ति प्रदान करता है तथा समाज सेवा में समर्पित विद्वान्-विदुषियों का अभिनन्दन करता है। इस वर्ष भी प्रतिष्ठान द्वारा यह आयोजन किया जा रहा है।

-: कार्यक्रम :-

दिनांक : ६ अक्टूबर २०१३ को

प्रातः ९ से १ बजे तक

स्थान : ११९, गुरुकुल गौतमनगर, नईदिल्ली- ४९

-: अध्यक्षता :-

स्वामी प्रणवानन्द जी सरस्वती

(आचार्य गुरुकुल गौतम नगर दिल्ली)

-: उद्घाटन : -

डॉ. योगानन्द शास्त्री,

विधानसभा अध्यक्ष, दिल्ली

: निवेदक :

सोमदेव शास्त्री, प्रधान

मानव सेवा प्रतिष्ठान (दिल्ली)

६०-बी, हूमायूँपुर, नई दिल्ली-२९,

दूरभाष : ०११-२०९१००९७

www.thearyasamaj.org

आरोग्य

भोजन : कुछ व्यावहारिक सिद्धान्त

ले. डॉ. अजय आर्य

गतांक से आगे

उपनिषदों में अन्न को ब्रह्म कहा गया है - **अन्नं वै ब्रह्म**। हमारे यहाँ सदा से तीन तरह की खराप की आवश्यकता महसूस की गई है। तन की खुराक मन के खुराक और आत्मा की खुराक तन का भोजन तो साधारण है। इसकी जानकारी भी सभी को है। आयुर्वेद में **हितभुक् मितभुक् और ऋतभुक** का वर्णन आया है। मन का भोजन मनोरंजन के साधन है। जैसे गरिष्ठ तथा अपाच्च भोजन से शरीर दुर्बल होकर बीमार पड़ जाता है वैसे ही कलुषित मनोरंजन से मन भी प्रभावित होता है। मन के लिये स्वस्थ मनोरंजन आवश्यक है। भक्ति, जप, तप, सत्संग और योगाभ्यास आत्मा का भोजन है। आपने सिर्फ शरीर को भोजन दिया तो असन्तुलन हो जायेगा। तीनों को यथासमय पवित्र भोजन मिलना आवश्यक है। हितकारी भोजन करना, आवश्यकता से अधिक भोजन न करना देशकाल, जलवायु तथा आबोहवा के अनुसार भोजन करने वाला व्यक्ति हमेश स्वस्थ रहता है। जो शरीर के लिए हितकारी है, वही भोजन करें। आज हम हित के प्रति सचेत नहीं है। इसीलिये हमारा स्वास्थ्य हमारे हाथ से निकल जा रहा है। एक रोगी को चिकित्सक परामर्श देता है कि आप ठन्डे जल से परहेज करें। गर्मी में सताया हुआ व्यक्ति चिकित्सक की सलाह को व्यर्थ समझकर वही करता है, जो वह चाहता है फलस्वरुप उसे रोग अपनी गोद में बिठा लेता है। मधुमेह के रोगी जब पथ्य अपथ्य का ख्यान नहीं रखते अब रोग विकराल रूल ले लेता है। हित, मित और ऋत का ख्यान रखने वाला कभी बीमार नहीं होता। आयुर्वेद के इन तीन सूत्रों पर विचार करना जरूरी है। हम भोजन के नियंत्रण से स्वास्थ्य को नियंत्रित कर सकते है। **सही मात्रा में लिया गया हितकर भोजन शरीर के लिए औषधि बन जाता है।**

भोजन के तीन सरल सूत्र :-

१. हमेशा हितकर भोजन ही करें। जो पदार्थ शरीर के अनुकूल न हों उसे न करें। शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला भोजन शरीर को कमजोर करता है। यही रोग को बढ़ाता है और शरीर को कमजोर करता है। हम प्रमादवश औरों का उदाहरण सामने रख लेते हैं। कोई भी पदार्थ अथवा औषधि इसलिए स्वीकारणीय नहीं हो जाती की वह हमारे किसी मित्र के लिए दुष्प्रभाव पैदा नहीं करती। हर वस्तु अथवा पदार्थ ग्रहण करने वाले की प्रकृति के अनुसार ही प्रभाव डालती है। एक ही पदार्थ दो अलग-अलग लोगों के लिये अलग-अलग प्रभाव उत्पन्न करता है।

२. निश्चित परिमाण में ही भोजन करें। आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण करना शरीर के साथ अन्याय करना है। मन का लोभ शरीर को दण्डित कर देता है। कभी कोई पशु इसलिए बीमार नहीं होता की उसने आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण कर लिया। व्यक्ति अक्सर उदर रोग से इसलिए पीड़ित होता है कि उसने आवश्यकता से अधिक भोजन कर लिया। अधिकभोजन करने वाला व्यक्ति आत्मसंयम से कोसों दूर होता है। बड़ी बड़ी पार्टियाँ में उपस्थिति देने के बाद व्यक्ति पुदीन हरा या इनो की शरण में जाता है। कई बार तो व्यक्ति को चिकित्सक की भी शरण में जाना पड़ जाता है।

३. मेरे एक मित्र हैं - कर्मवीर आर्य आज वे एक प्रतिष्ठित कालेज में प्राध्यापक है। अध्ययनकाल (बचपन) में कही उनकी बात याद आती है। जब भी भोजन थोड़ा अधिक होता था, हम आग्रह करते थे कि थोड़ा बचा है, इसे खत्म कर दो। वे इसके प्रत्युत्तर में कहा करते थे कि पेट को डस्टबिन (कचरादान) बनाने से अच्छा है कि भोजन को कचरा दान में डाल दिया जाए। भोजन को कचरादान बनाने से बचना चाहिए। जिसे यह नहीं पता कि उसे कितने भोजन की आवश्यकता होगी उसे दुनिया का दूसरा व्यावहारिक ज्ञान कैसे होगा, जो अपनी आवश्यकता, अपने भोजन को नहीं समझ सकता वह

www.thearyasamaj.org

दुनिया के व्यवहार को नहीं समझ सकता। निश्चित आवश्यकता तथा परिमाण से ज्यादा भोजन करना रोगों को नियंत्रण देना है।

४. विशेष समय में प्रकृति द्वारा प्राप्त फल, शाक सब्जी का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है। गर्मी में प्राप्त फल आपको गर्मी से लड़ने के लिए तैयार करते हैं। हम आजकल अपने जीवन में प्रिजर्वेटिव (प्रसंस्कृत) खाद्यपदार्थों के आदि होते जा रहे हैं। यह शरीर के लिए घातक है। किसी पदार्थ को महीनों तक सुरक्षित रखने के लिए उसमें कितना विष मिलाया जाता है इस बात का हमें अनुमान भी नहीं है। यह विष भोजन के माध्यम से पूरे शरीरिक तंत्र को दूषित अथवा विषयुक्त कर देता है। आज बारहमास मिलने वाले मटर आदि सब्जियों से हमारा बाजार सजा हुआ है। इनके नियमित सेवन से भयंकर बीमारियाँ शरीर में प्रवेश करती है। जरा सोचिये कि हमारी बनाई हुई सब्जी एक दिन में खराब हो जाती है। डिब्बा बंद सब्जियाँ छः से बारह महीने तक सुरक्षित होने के दावे के साथ हमें परोसी जा रही है। हम प्रमादवश इन सस्ते, सुन्दर, सहज पदार्थों की शरण में जा रहे हैं। एक लम्बे अंतराल के बाद रोगग्रस्त होकर शोक के सागर में गोता लगाने को विवश हो जायेंगे। हमारे खेतों में उत्पन्न शुध तथा ताजा भोजन हमारे स्वास्थ्य के लिए अनुकूल होता है। आयुर्वेदिक सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति जिस मिट्टी में पैदा हुआ है उसी मिट्टी में उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ, वनस्पतियों से ही उसका इलाज किया जाना चाहिए। उसी मिट्टी में उत्पन्न औषधियाँ अधिक लाभकारी और प्रभावकारी होती है।

भोजन का स्थान :- महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार भोजन का स्थान रमणीय, शांत तथा सुन्दर होना चाहिए। आचार्य चाणक्य ने पागल, भूखे और बालक के समक्ष भोजन ग्रहण करने से मना किया है। **सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास** का एक प्रसंग यहाँ उद्धृत करता हूँ -

प्रश्न - चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा, वा बाहर बैठ के?

उत्तर - जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे, वहाँ भोजन करना चाहिए, परन्तु आवश्यक युद्धादिको मैं तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े खड़े भी खाना पीना अत्यंत उचित है।

प्रश्न - क्या अपने ही का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ?

उत्तर - जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं है, क्योंकि जो ब्रह्मणादि वर्णस्थस्त्री-पुरुष रसोई बनाने चौका देने, बर्तन-भाड़े मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहे तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके। देखो महराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि-महर्षि आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई मुसलमान आदि के मतमतांतर चले, आफस में बैर विरोध हुआ। उन्होने मद्यपान गोमांस आदि का खाना स्वीकार किया, उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा खड़ा हो गया।

प्रश्न - एक साथ खाने कुछ दोष है अथवा नहीं ?

उत्तर - दोष है। क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रूधिर बिगड़ जाता है, वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है, सुधार नहीं। इसलिये -

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यातनाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥

(मनु. २.५६)

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दें और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ-मुख धोये बिना कहीं इधर-उधर जाय।

प्रश्न - गुरोरुच्छिष्टभोजनं इस वाक्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर -इसका अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक अन्न शुद्ध स्थिथ है उसका भोजना करना, अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिए।

खाना खाते समय ध्यान रखने वाली बातें -

चबाकर खाएँ :- वजन कम करने वाले लोगों के लिये यह जरुरी है कि खाने को कम से कम ३०-३५ बार तक चबाकर खाएं। अक्सर पौष्टिक और संतुलित खाना खाते समय लोग

www.thearyasamaj.org

१०-१५ बार चबाकर जल्दी-जल्दी खाना खा लेते हैं। चबाकर खाने से कब्ज दूर होती है, दांत मजबूत होते हैं, भूख बढ़ती है तथा पेट की कई बीमारियाँ नहीं होती। पुरुष की अपेक्षा महिलाएँ अपना खाना ज्यादा चबाकर खाती हैं।

भूख लगने पर ही खाएँ :- कुछ लोग स्वाद लेने के लिये बार-बार खाना खाते हैं। पहले का खाना पचा नहीं कि दोबारा खा लिया। ऐसा करने से पेट की बीमारियाँ शुरु हो जाती है और खाना अच्छे से पच नहीं पाता है।

नियमित अंतराल पर खाएँ - खाने के बीज में कम से कम ६ घंटे का अंतराल होना चाहिए। रात्रि के भोजन के पचने में समय लगता है इसलिए डिनर जल्दी कर लेना चाहिए। नियमित रूप से दिन में तीन बार भोजन करने से एकाग्रता बढ़ती है।

खाने से पहले हाथ धुलें -भोजन से पहले हाथों को साबुन से अच्छी तरीके से धुल लें। जिससे हाथ में मौजूद बैक्टिरिया आपके खाने के साथ आपके शरीर में प्रवेश कर नुकसान न पहुंचाएं।

बैठकर खाएँ - भोजन बैठकर ही खाएं क्योकि चलते-चलते खाना खाने से पाचन क्रिया पर असर पड़ता है। बैठकर खाते समय हम सुखासन की स्थिति में होते हैं जिससे कब्ज, मोटापा, एसिडिटी आदि पेट संबंधी बीमारियाँ नहीं होती है।

खाते वक्त पानी न पिएँ - भोजन के समय पानी पीने से पाचन क्रिया पर असर होता है। इसलिए खाने के आधे या एक घंटे पहले या बाद में पानी पिएँ।

एक्सरसाइज के तुरंद बाद न खाएँ - वर्कआऊट या एक्सरसाइज करने के तुरंत बाद खाना न खाएं। शरीर को नार्मल टेंपरेचर में आने दें उसके बाद ही खाना खाएँ।

अच्छे से खाने के फायदे :- याददास्त पर असर : अच्छी तरीके से चबाकर खाने से एकाग्रता बढ़ती है और सुबह के नाश्ते में ऊर्जादायी पदार्थों को शामिल करने से दिनभर जोश रहता है। भोजन में अखरोट और कद्दू को शामिल करने से याददास्त बढ़ती है।

मधुमेह से बचाव - खाने के तरीके में बदलाव करके मधुमेह से बचा जा सकता है। धीरे-धीरे और चबाकर खाने से ग्लूकोज को जोड़ने का काम दोगुनी गति से होता है जिससे मधुमेह का खतरा कम होता है।

मोटापा दूर करें :- भूखा रहने से वजन कम नहीं होता बल्कि वजन बढ़ने का खतरा बढ़ जाता है। दिनभर में अगर हम निश्चित अंतराल पर अच्छे से चबाकर खाते हैं तो पाचन क्रिया संतुलित रहती है। जो लोग सुबह नाश्ता नहीं करते उनकी पाचन क्रिया धीमी हो जाती है जिससे खाना अच्छे से पच नहीं पाता है और वजन तेजी से बढ़ने लगता है।

आयुर्वेद दृष्टि से एक विचार भोजन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि सुबह का नाश्ता राजा की तरह होना चाहिए, दोपहर का मध्यमवर्ग की तरह और रात का भिखारी (गरीब) की तरह। इसका आशय है कि सुबह सर्वाधिक विटामिन प्रोटीन से युक्त भोजन किया जाना चाहिए। जो सुबह ऊर्जायुक्त भोजन करते हैं वे दिनभर ऊर्जायुक्त रहते हैं। दोपहर का भोजन मध्यम होना चाहिए न तो कम न तो ज्यादा। रात्रिकालीन भोजन अत्यन्त अल्प और सुपाच्य होना चाहिए। रात को जितना कम खाया जाये उतना ठीक है। रात का भोजन न्यून होना चाहिए। आयुर्वेदाचार्य के अनुसार चालीस की अवस्था में पहुंचने के बाद रात्रिकालीन भोजन को बिलकुल कम या बंद कर देना चाहिए। मेरे गुरुदेव पूज्य स्वामी विवेकानन्द सरस्वती जी महाराज वर्षों से रात्रि में सिर्फ दुग्धपान कर रहे हैं। उनकी ऊर्जा आज भी युवाओं को टक्कर देती है। जगद्गुरु ब्रह्मानन्द आश्रम बणी पुण्डरी के पीठाधीश्वर स्वामी बलेश्वरानन्द जी महाराज भी विशेष परिस्थितियों को छोड़कर रात्रि में दूध का ही सेवन करते हैं।

पता : गणपति विहार, बोरसी चौक, दुर्ग (छ.ग.)

✍ ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमलों से हिन्दोस्तानियों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बान्धने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है। १९वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुंचा।
(पीर मुहम्मद यूनिस)

www.thearyasamaj.org

आरोग्य जगत् — होमियोपैथी से सफेद दाग का उपचार

- डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी
(होमियोपैथिक चिकित्सक)
त्रिवेदी होमियो औषधालय, टाटीबन्ध रायपुर (छ.ग.)
मोबा. : ९८२६५११९८३, ९४२५५१५३३६

सफेद दाग चमड़ी का भयावह रोगा है, जो रोगी की शक्ल सूरत प्रभावित कर शारीरिक के बजाय मानसिक कष्ट ज्यादा होता है। इस रोग में चमड़े में रजक पदार्थ जिसे पिगमेंट मेललिन कहते हैं, उसकी कमी हो जाती है, चमड़ी को प्राकृतिक रंग प्रदान करने वाले इस पिगमेंट की कमी से सफेद दाग पैदा होते हैं।

यह कर्म विकृति पुरुषों की बजाय महिलाों में अधिक होती है। ल्यूकोडर्मा आज बेहद आम समस्या है, जिसके कारण का पूरी तरह पता नहीं चल सकता है, फिर भी होमियो चिकित्सा द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। यह एक प्रकार का चर्म रोग है जिससे शरीर के अंदरुनी भाग को कोई भी नुकसान नहीं पहुंचता है।

कोढ़ नहीं है सफेद दाग :-

त्वचा पर सफेद दाग की समस्या को कोढ़ (लेप्रोसी) समझने की भूल नहीं करना चाहिए, हालांकि कोढ़ की शुरुवात में भी त्वचा पर सफेद दाग होते हैं लेकिन वे छूने से संक्रमित नहीं होते। सफेद दाग एक प्रकार का चर्म रोग है। चिकित्सा विज्ञानियों ने इस रोग के कारणों का अनुमान लगाया है। पोषक तत्वों की कमी, फंगल संक्रमण, शरीर में कोई भी भाग जल जाने अथवा आनुवांशिक कारणों से यह रोग पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है।

पेट के रोग, लीवर का ठीक से कार्य नहीं करना, मानसिक तनाव, छोटी और बड़ी आंत में कीड़े होना, टाइफाइड बुखार, शरीर के पसीना होने के सिस्टम में खराबी आदि कारणों से यह रोग पैदा हो सकता है।

होपियोपैथी उपचार :- कई रोगी इस रोग का उपचार कराकर ठीक हो गए हैं। कई रोगियों का उपचार चल रहा है। होमियोपैथी चिकित्सा कारगर एवं सुरक्षित माना गया है। इसका इलाज बहुत प्रभावी है, और शरीर के प्रभावित स्थान को त्वचा के रंग जो सामान्य बना देता है। इससे रोगी का मानसिक तनाव समाप्त हो जाता है, और उसके अन्दर आत्मविश्वास बढ़ जाता है।

रोगी के पिता का कथन :- मेरी लड़की नीतू साहनी जिसकी आयु ७ वर्ष है, उसके गले, माथे और पीठ पर सफेद दाग हो गया था। उसे डॉ. त्रिवेदी के टाटीबंध अस्पताल में होमियोपैथी ईलाज लगभग दो साल तक कराया, मेरी लड़की का सफेद दाग का रोग पूरी तरह से ठीक हो गया है। *रणजीत साहनी (पिता) मोहबा बाजार, रायपुर*

प्रमुख औषधियाँ :- चाइना, नक्स्वोमिका, सल्फर, आर्सेनिक, एसिडनाइट्रिक, आर्सेनिकम सल्फ, सीपिया, फेरम मेट आदि औषधियाँ होमियो चिकित्सक की सलाह से ली जा सकती है।

पथ्य :- बथुआ की सब्जी, अखरोट, अल्फाल्फा, छाछ, हरी सब्जियों का सेवन करना चाहिए।

अपथ्य :- दूध व मछली साथ साथ नहीं लेना चाहिए, मिठाई रबड़ी दूध व दही एक साथ नहीं लेना चाहिए। गरिष्ठ भोजन, खटाई, आचार, अधिक नमक, मुर्गा मटन, व अंडा का सेवन नहीं करना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

समाचार प्रवाह

स्वतन्त्रता दिवस समारोह हर्षोल्लास से सम्पन्न

दुर्ग । आर्य शिक्षा समिति दुर्ग-भिलाई द्वारा संचालित डी.ए. मॉडल हा.से. स्कूल, डी.ए.व्ही. मॉडल कालेज (बी.एड.) आर्यनगर, दुर्ग महर्षि दयान्द उ.मा. विद्यालय मठपारा, महर्ष दयानन्द उ.मा. विद्यालय गयानगर, महर्षि दयानन्द उ.मा. विद्यालय कोहका भिलाई में हर्षोल्लास के साथ मनाया, आर्यसमाज व आर्य शिक्षा समिति के संरक्षक माननीय गुलाबचंद वानप्रस्थी जी द्वारा ध्वजारोहण किया गया तत्पश्चात् विद्यार्थियों के द्वारा सस्वर राष्ट्रगान व राष्ट्र गीत का पाठ किया गया एवं छात्रों द्वारा आकर्षक व्यायाम का प्रदर्शन किया गया। समारोह का आरम्भ आचार्य लोकनाथ शास्त्री द्वारा वैदिक मंत्रों से किया गया। उपस्थित अतिथियों का पुष्प गुच्छ से स्वागत किया गया। आर्य शिक्षा समिति के संरक्षक माननीय गुलाबचंद वानप्रस्थी एवं श्री ओम प्रकाश गुप्ता ने समस्त विद्यालयीन परिवार, प्रदेश की जनता को स्वतन्त्रता दिवस की शुभकामनायें दी।

आर्य शिक्षा समिति के अध्यक्ष श्री हरीश बंसल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि आजादी को प्राप्त करने के लिये शहीदों ने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने हमें आजादी की प्रेरणा दी। अंत में विद्यालय की प्राचार्या श्रीमती ईश्वरी अग्रवाल ने समस्त आगन्तुक अतिथियों, पालकों व नागरिकों का आभार प्रकट किया। कार्यक्रम का संचालन आचार्य लोकनाथ शास्त्री ने किया।

इस समारोह में आर्यसमाज के प्रधान श्री जे.पी. तलवार, जी.एस. ठाकुर, पुष्पा झिझुवाडिया, कुसुम अग्रवाल, बालकिशन लूथरा, उपाध्यक्ष विनीत श्रीवास्तव, सचिव संतोष शर्मा, पं. सेवकराम, डॉ. एस.के. साहू, प्राचार्या रीता कारकुन, अनीता तलवार, प्रधान पाठिका रेखा सालुके, विजयलक्ष्मी, मेघा साइखेड़कर आदि गणमान्यजन उपस्थिथ थे।

संवाददाता : प्राचार्या, म.द.उ.मा.वि. दुर्ग

गुरुकुल हरिपुर द्वारा प्रचार एवं अन्न-वस्त्र वितरण

हरिपुर (उड़ीसा) । गुरुकुल हरिपुर विगत साढ़े तीन वर्षों से विभिन्न प्रकार से भारत के विभिन्न प्रान्तों के ऐसे इलाकों में जहां अब तक सरकार की ओर से बिजली, सड़क, और पानी की समुचित व्यवस्था नहीं हो पाई, आर्य प्रतिनिधि सभाओं एवं आर्यसमाजों की ओर से वैदिक धर्म के प्रचार की व्यवस्था नहीं हुई है उन इलाकों में पहुंचकर के प्रचार एवं सहयोग कर रहा है। इसी श्रृंखला में गत ९-१० अगस्त १३ को गुरुकुल हरिपुर के तत्वावधान में तथा जनसहयोग से झारखण्ड प्रान्त के सिमडेगा जिला के कुरडेग विकास खंड के लिटीमारा, कसडेगा, और गाताडीह को केन्द्र बनाकर विभिन्न २० लगभग गांवों के सहस्राधिक लोगों को वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज की मान्यताओं को बताया गया और वैदिक जीवन जीने के लिये उपदेश दिया गया। उपदेश से प्रभावित होकर कुछ परिवारों ने मांस, मदिरा एवं अन्य मादक द्रव्यों का सेवन न करने का लिखित संकल्प लिया। वितरण के अन्तर्गत ६०० निर्धन प्रत्येक परिवार को २५-२५ किलो चावल जिसका मूल्य २० रु. प्रति किलो के दर से ५०० रु. तथा एक साड़ी जिसका मूल्य २०० रु है। इस प्रकार एक परिवार को कुल ७०० रु. की सहायता प्रदान करने की व्यवस्था जन सहयोग से की गई थी।

ध्यान रहे यह वह इलाका है जहां राष्ट्रविरोधी तत्व गांव-गांव में पनप रहे हैं तथा ईसाइयों का भी जबरदस्त बोलबाला है। यह समस्त कार्यक्रम सेवावीर महात्मा वानप्रस्थ श्री सत्यनारायण जी आर्य (कोलकाता) के आशीर्वाद से तथा गुरुकुल के संचालक डॉ. सुदर्शनदेव आचार्य एवं दिलीप कुमार जिज्ञासु के प्रत्यक्ष देख-रेख में सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

संवाददाता : दिलीप कुमार जिज्ञासु, आचार्य गुरुकुल हरिपुर

www.thearyasamaj.org

भारतीय आर्य भजनोपदेशक परिषद् का चुनाव सम्पन्न

फरीदाबाद (हरियाणा) । विगत १४ जुलाई २०१३ को आर्य भजनोपदेशक परिषद की कार्यकारिणी एवं पदाधिकारियों के चुनाव, यज्ञ, सत्संग के पश्चात् निर्वाचन अधिकारी आर्यजगत के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. सोमदेव शास्त्री (मुम्बई) ने निम्नलिखित पदाधिकारियों का चुनाव किया - प्रधान - श्री सत्यपाल मधुर (दिल्ली), उपप्रधान-श्री सहदेव बेधड़क (हरियाणा), श्री योगेश आर्य (बिजनौर), महामंत्री- डॉ. कैलाश कर्मठ (कोलकाता), उपमंत्री- श्री उपेन्द्र आर्य (चण्डीगढ़), श्रीमती सुरेश आर्या (दिल्ली), कोषाध्यक्ष - श्री नरेशदत्त आर्य (बिजनौर), लेखा परीक्षक - श्री त्रियुगी नारायण पाठक, संरक्षक - स्वामी प्रणवानन्द जी (दिल्ली), डॉ. सोमदेव शास्त्री (मुम्बई)।

कार्यकारिणी सदस्य में सर्वश्री बेगराज आर्य, बृजपाल कर्मठ, हरिसिंह आर्य (गादोज), नरेश निर्मल, सत्यपाल सरल, श्रीमती सुलभा शास्त्री, कुलदीप आर्य, ज्ञानेन्द्र तेवतिया, नारायण सिंह आर्य । **विशेष आमंत्रित सदस्य** : श्री उदयवीर आर्य, श्री सत्यप्रकाश आर्य ।

संवाददाता : डॉ. कैलाश कर्मठ, (कोलकाता) मंत्री

आर्यसमाज बैजनाथपारा रायपुर का फ्रेश निर्वाचन सम्पन्न

रायपुर । तदर्थ समिति के संयोजक श्री सोमप्रकाश गिरी उपप्रधान छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के कुशल संचालन में आर्यसमाज बैजनाथपारा रायपुर का फ्रेश निर्वाचन दिनांक २५-८-२०१३ को साधारण सभा में सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में सुसम्पन्न हुआ।

श्री दयाराम वर्मा सर्वसम्मत, निर्विरोध रूप से प्रधान पद पर निर्वाचित हुए । फ्रेश निर्वाचन में निम्नलिखित पदाधिकारी एवं अंतरंग सदस्य चुने गए :-

१. प्रधान - श्री दयाराम वर्मा
२. उपप्रधान - श्री राजनमोहन एवं श्रीमती सुधा दुबे,
३. मंत्री - श्री केशवराम श्रीवास,
४. उपमंत्री - श्री सी.एल. यादव एवं श्री विकाश अंजनकर
५. कोषाध्यश्र - डॉ. एम.एल. साहू
६. अधिष्ठाता आर्यवीर दल - श्री देवेन्द्र कुमार यदु
७. पुस्तकाध्यक्ष - श्रीमती कांति मलेवार
८. अंतरंग सदस्य - श्री दीनानाथ वर्मा, श्रीमती कमला रघुवंशी, श्री लक्ष्मीकांत मातुरकर। अंकेक्षक : श्री लालाराम शर्मा।

संवाददाता : भुनेश्वर प्रसाद शर्मा प्रबंधक,

वेदपाल आर्य जी को पत्नी शोक

रायगढ़ । छ.ग.प्रा.आ. प्रति. सभा के विशेष आमंत्रित सदस्य श्री वेदपाल आर्य जी की पत्नी श्रीमती वासुकि आर्या का अस्वस्थता के कारण १५ अगस्त २०१३ को निधन हो गया। दि. २४,२५ अगस्त १३ को शान्ति यज्ञ रखा गया। आचार्य धनञ्जय शास्त्री 'जातवेदाः' ने यज्ञ और उद्बोधन के द्वारा आध्यात्मिक संदेश दिया। श्री पीताम्बर, नीलाम्बर एवं सोनु तथा बहन संतान है । आपका परिवार आर्य विचार से प्रभावित है। समापन के समय क्षेत्रीय आर्यजनों ने परिवार की शान्ति एवं सौमनस्य हेतु मौन प्रार्थना की। पूर्व मंत्री श्री प्रहलाद प्रसाद एवं श्री रामेश्वर प्रसाद आर्य ने परिवार को ढाढस बंधाया। शान्तिपाठ से समापन हुआ।

संवाददाता : रुद्र आर्य, उड़ीसा

आर्य नेता श्री कन्हैयालाल आर्य जी को पितृ शोक

गुड़गांव (हरियाणा) । अपने जीवन के ९४ वसन्त देखने के पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के वरिष्ठ उपप्रधान एवं आर्य केन्द्रीय सभा गुड़गांव के प्रधान के पिताश्री रामचन्द्र आर्य लम्बी बीमारी के पश्चात् स्वर्ग सिधार गये । श्री रामचन्द्र आर्य एक निष्ठावान समाजसेवी एवं स्पष्ट वक्ता थे। उनकी करनी और कथनी सदा एक जैसी थी। गुड़गांव व गुड़गांव से बाहर कोई ऐसी संस्था नहीं जिसे वह अपनी पवित्र कमाई में से उसे सहयोग न करते हों। वह अपने पीछे एकमात्र पुत्र श्री कन्हैयालाल आर्य एवं बड़ी पुत्री श्रीमती ईश्वर देवी एवं छोटी पुत्री श्रीमती पुष्पादेवी एवं पत्नी श्रीमती जमना देवी को छोड़कर गए हैं । अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से पांच वैदिक विद्वानों द्वारा किया गया।

www.thearyasamaj.org

अग्निदूत के विशेषांक हेतु लेखकों से निवेदन

अग्निदूत का माह नवम्बर २०१३ का अंक "महर्षि दयानन्द निर्वाण विशेषांक" होगा

प्रिय पाठकगण / सदस्यगण / सहयोगीजन / लेखकगण,

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आपकी अपनी यशस्विनी हिन्दी मासिक पत्रिका 'अग्निदूत' (छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख पत्र) का १००वाँ अंक माह नवम्बर २०१३ में प्रकाशित होने जा रही है। आकर्षक रंगीन जिल्द, सुन्दर छपाई-सफाई, सैद्धान्तिक लेख, महर्षि दयानन्द का संदेश, चिकित्सा चर्चा, सुभाषित, वैदिक सूक्ति, वेद मन्त्र अर्थ चिन्तन, स्थानीय व राष्ट्रिय समाचार से परिपूर्ण, यह मासिक पत्रिका सम्पूर्ण भारत में रूचि से पढ़ी जा रही है, परिणाम स्वरुप सदस्य संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

अतः सुधि पाठकों, विद्वत्जनों, लेखकों से निवेदन है कि वे अग्निदूत के "महर्षि दयानन्द निर्वाण विशेषांक" के लिये आवश्यक लेख सभा कार्यालय को १० अक्टूबर २०१३ तक, अनिवार्य रुप से भेज देवें। कृपया लेख के अंत में अपना नाम व पूरा पता, चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें। रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें। लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार की भुगतान नहीं किया जाता है। - संपादक

अग्निदूत के वार्षिक सदस्यों की सेवा में

छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के मुख पत्र मासिक 'अग्निदूत' के समस्त वार्षिक सदस्यों से निवेदन है कि अपना वार्षिक शुल्क १००/- यथाशीघ्र सभा कार्यालय को संलग्न मनीआर्डर फार्म में भरकर भेज दें, जिससे कि उन्हें नियमित रूप से 'अग्निदूत' भेजा जाता रहे। जिन सदस्यों के शुल्क तीन वर्षों से अधिक बकाया हो, उनसे निवेदन है कि वे अपना दसवर्षीय शुल्क ८००/- रु. भेजें। इस कार्य को यथाशीघ्र प्राथमिकता से करें। अन्यथा इस मास से अग्निदूत भेजना बंद कर दिया जायेगा। पत्र व्यवहार के लिए अपना सदस्य संख्या तथा पूरा पता पिन कोड सहित अवश्य लिखें। सभा का भारतीय स्टेट बैंक, दुर्ग शाखा बचत खाता एकाऊन्ट नं. : 32914130515 है, जिसमें आप किसी भी भारतीय स्टेट बैंक की शाखा से आनलाईन शुल्क जमा कर सभा कार्यालय के दूरभाष नं. ०७८८-२३२२२५ द्वारा सूचित अथवा अलग से पत्र लिखकर सूचित कर सकते है।

– दीनानाथ वर्मा, मंत्री, मो. ९८२६३६३५७८

कार्यालय पता : 'अग्निदूत', दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग 491001 (छ.ग.) फोन : ०७८८-२३२२२२५

www.thearyasamaj.org

सितम्बर 2013
CHH-HIN/2006/17407

(छपी सामग्री प्रिन्टेड बुक)

सेवा में,

श्रीमान

प्रेषक :

अग्निदूत, हिन्दी मासिक पत्रिका
कार्यालय, छ.ग.प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर,
आर्यनगर, दुर्ग -491001 (छ.ग.)

वार्षिक साधारण सभा बैठक की सूचना

सभा नियमावली धारा 25 और नैमित्तिक अंतरंग बैठक दिनांक 14-07-2013 के निर्णयानुसार छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की वार्षिक साधारण बैठक दिनांक 22/09/2013 (रविवार) दोपहर 2.00 बजे से आर्यसमाज सलखिया (गुरुकुल आश्रम) तह. लैलूंगा, जिला रायगढ़ (छ.ग.) में आयोजित की गई है। अतः सभी सम्मानित प्रतिनिधियों से अनुरोध है कि वार्षिक साधारण बैठक में, निर्धारित समय पर, अनिवार्य रुप से उपस्थित होकर महत्वपूर्ण विचारणीय विषयों पर निर्णय लेने में सभा को सहयोग प्रदान करेंगे।

सूचना सभी प्रतिनिधियों को दिनांक 21 अगस्त 2013 को पंजीकृत डाक द्वारा उनके आर्यसमाजों को भेजी जा चुकी है, जिसमें 'विचारणीय विषय' की सूची के साथ 'छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा नियमावली में संशोधन, परिवर्तन, न्यूनाधिक करने बाबत् प्रस्ताव' भी भेजी गई है।

वार्षिक साधारण सभा बैठक में सलखिया (रायगढ़) पहुंचने वाले प्रत्येक प्रतिनिधिगण अपने आने की सूचना दिनांक 20 सितंबर 2013 तक अनिवार्य रुप से कार्यालय मंत्री श्री दिलीप आर्य को मो. नं. 9630801257 पर सूचित करने का कष्ट करेंगे, ताकि आने-जाने, भोजन एवं आवास की व्यवस्था सुनिश्चित की जा सके।

दीनानाथ वर्मा
मंत्री
छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
मोबा. : 9826363578

सम्पादक प्रकाशक मुद्रक आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा पायोनियर प्रिन्टर्स, ओमपरिसर, आर्यनगर, दुर्ग से छपवाकर छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग से प्रकाशित किया गया।